प्रकाशक
विद्यामन्दिर-प्रकाशन
मुरार (ग्वालियर)

प्रथम सस्करण
सवत् २००३
मूल्य २)

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

निवेदन

सर्व प्रथम मैंने महाभारत सुना था अपने पितामह राजा गोकुलदासजी के समय, अपने कौटुंबिक श्री गोपाल-मदिर मे । उस समय मेरी अवस्था लगभग १२ वर्ष की थी । घर मे महाभारत पढा अथवा सुना जाना उन दिनो अशुभ माना जाता था, इसीलिए यह कथा कई महीनो तक हमारे मदिर मे चली थी । इस बात को अब लगभग ३८ वर्ष बीत चुके । उस समय जो कुछ मैंने सुना था उसका अधिकाश भाग तो याद नही, परन्तु मन पर उस कथा तथा कथा मे वर्णित चरित्रो का जो प्रभाव पडा था, उसकी छाया अब भी पूर्ण रीति से नही मिट पाई है । जिन चरित्रो का उस समय मेरे मन पर गहरा असर पडा उनमे से एक था कर्ण ।

इसके बाद जब इण्डियन प्रेस ने महाभारत का पूरा हिन्दी-अनुवाद शनै शनै छापा तब मैंने उस अनुवाद को पढा । कर्ण का जो प्रभाव बाल्यावस्था मे मेरे मन पर पडा था वह अधिक गहरा हो गया और महाभारत के इस पारायण मे कर्ण के चरित्र की जिस बात ने मेरे मन पर सबसे अधिक असर डाला वह थी उसकी लगातार द्वन्द्वात्मक भावनाएँ तथा कृतियाँ । महाभारत मे कर्ण द्वारा उच्च से उच्च कृतियाँ होती है और निकृष्ट से निकृष्ट भी । एक ही व्यक्ति एक दूसरे से ठीक विरोधी कृतियाँ इस प्रकार कैसे कर सकता है । महाभारत की इस द्वितीय आवृत्ति मे यह मेरे चिन्तन का एक विषय हो गया ।

सन् १९३० मे जब पहले पहल मैं जेल गया और मैंने फिर से नाटक लिखना आरम्भ किया तब कर्ण पर भी एक नाटक लिखने की मेरी इच्छा हुई, परन्तु इसके लिए मुझे एक बार फिर से पूरा महाभारत पढना आवश्यक जान पडा, जिसका अवसर मुझे सन् ४१ तक नहीं मिल सका ।

सन् १९४१ मे व्यक्तिगत सत्याग्रह के समय मै श्री० दादा साहब गोले, मध्यप्रात के भूतपूर्व मत्री, के साथ जबलपुर जेल मे रहा। उस समय गोले साहब के साथ मैने महाभारत मूल मे पढा। रोज तीन घटे हम दोनो यही करते। पढते-पढते मै कर्ण नाटक के सम्बन्ध मे कुछ नोट भी बनाता जाता।

प्रस्तुत नाटक उसी जेल-यात्रा मे लिख जाता, किन्तु अस्वस्थता के कारण मै अवधि के पहले छोड दिया गया और यद्यपि महाभारत का पूरा पारायण हो गया, पर यह नाटक न लिखा जा सका।

इस नाटक का लेखन हुआ सन् १९४२ मे ९ अगस्त को मेरी गिरफ्तारी के बाद। इस बार जेल मे पहले-पहल न तो हम राजनैतिक नजरबन्दो को पुस्तके मिली और न नोटबुक। जब लिखने पढने का सामान मिला, तब सबसे पहले इस बार की जेल-यात्रा मे मैने कर्ण नाटक ही लिखा।

इस नाटक के कथानक और पात्र महाभारत मे वर्णित कर्ण की कथा मे मैने कोई परिवर्तन नही किया है। सभाषणो तक मे महाभारत मे वर्णित अनेक सभाषणो एव भावनाओ को मैने जैसा का तैसा ले लिया है। केवल एक स्थान पर एक छोटा सा परिवर्तन है। द्वैत वन मे जब चित्ररथ गन्धर्व से दुर्योधन हारता है तब मैने कर्ण को उस युद्ध मे अनुपस्थित रखा है। ऐसा मै न करता तो कर्ण का चरित्र बहुत गिर जाता। इतनी सी स्वतत्रता लेखक ले सकता है, ऐसा मेरा मत है।

हाँ, नाटक के गठन और कर्ण की द्वदात्मक भावनाओ तथा कृतियो का कारण मैने बताया है। उसके लिए मै जिम्मेदार हूँ। उस सम्बन्ध मे मैने अपने (हर्ष) नाटक की भूमिका मे अपना जो मत प्रकट किया था, उसे यहाँ उद्धृत करता हूँ—

"मेरा मत है कि नाटक, उपन्यास या कहानी-लेखक को यह अधिकार नही है कि किसी भी पुरानी कथा को तोड-मरोड कर उसे एक नयी कथा ही बना दे। हाँ, कथा का अर्थ (interpretation) वह अवश्य अपने मतानुसार कर सकता है।"

मैंने इन नाटक मे अपने इसी मत का पालन किया है ।

इन नाटक मे वर्णित सारे चरित्र महाभारत मे आए हैं । कर्ण की पत्नी का नाम मुझे महाभारत मे नही मिला । इसलिए उसका नाम मेरा रखा हुआ है ।

लोकोत्तर बातो से मैंने अपने सभी नाटको मे बचने का प्रयत्न किया है, पर इन नाटक मे मैं उनसे पूर्ण रीति से बच नही सका । दृष्टान्त के लिए कर्ण के अलौकिक कुण्डल-कवच, द्रौपदी के चीर के बढाव इत्यादि से मैं कैसे बचता ।

इन नाटक के गानो मे से प्रथम दो गान श्री० भवानीप्रसादजी तिवारी और शेष श्री गोविन्दप्रसादजी तिवारी के लिखे हुए हैं और जबलपुर के इन दोनो महानुभावो की इस कृपा के लिए मैं दोनो का अनुग्रहीत हूँ ।

नयी दिल्ली
चैत्र शुक्ल १
२००३

गोविन्ददास
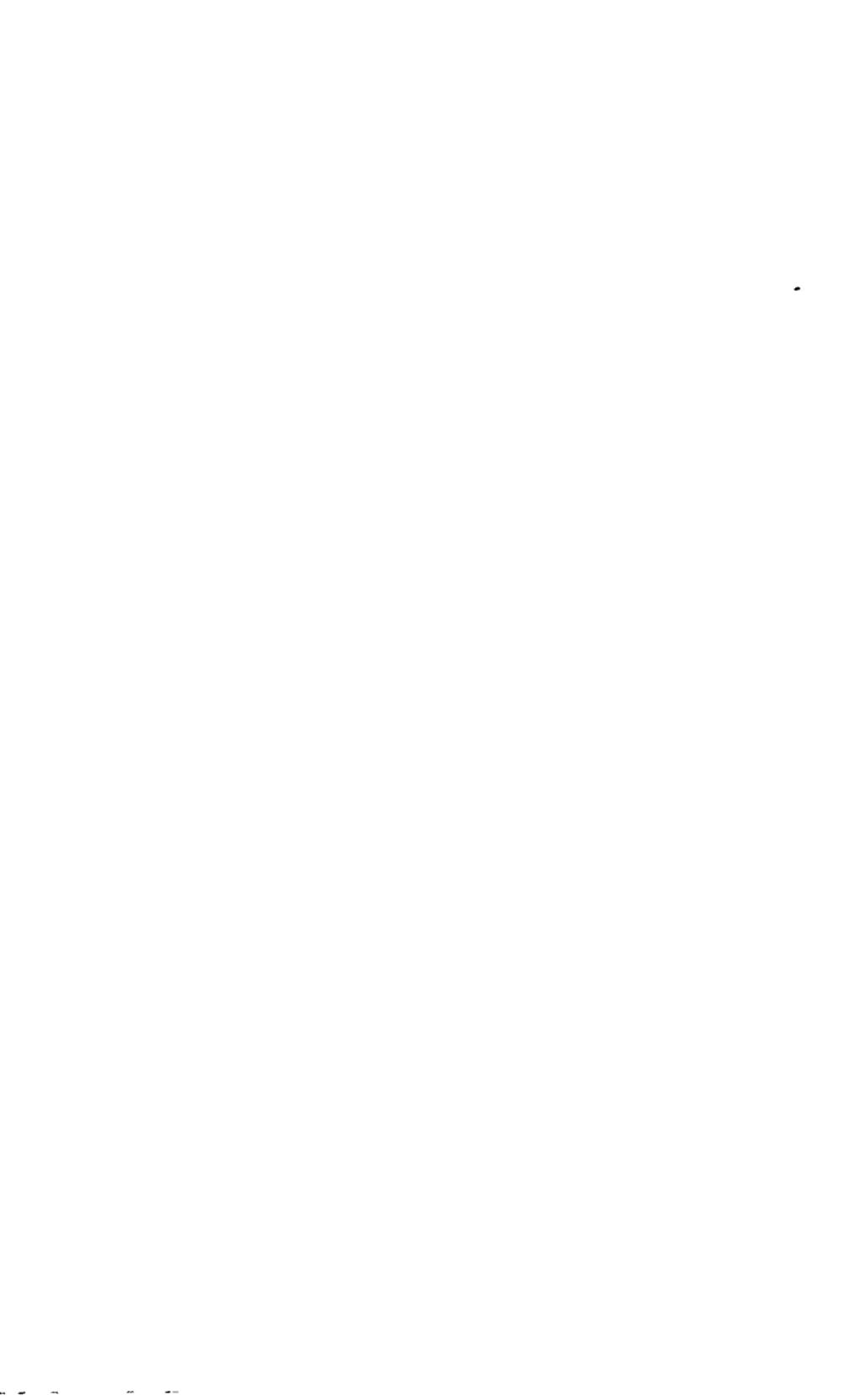
मुख्य पात्र, स्थान, समय

पात्र—

कर्ण

दुर्योधन

दुःशासन

विकर्ण [धृतराष्ट्र का सबसे छोटा पुत्र]

शकुनि

अश्वत्थामा

धृतराष्ट्र

भीष्म

द्रोण

कृप

विदुर

युधिष्ठिर

भीम

अर्जुन

नकुल

सहदेव

कृष्ण

घटोत्कच [भीम का पुत्र]

कुन्ती

द्रौपदी

रोहिणी [कर्ण की पत्नी]

स्थान—हस्तिनापुर, इन्द्रप्रस्थ, वन, विराटनगर, कुरुक्षेत्र

समय—द्वापर युग

कर्त्ता

उपक्रम

स्थान—हस्तिनापुर के राजप्रासाद की रगशाला

समय—अपराह्न

[सूर्य के दर्शन नही होते, पर सूर्य के प्रकाश में रगशाला आलोकित है। नेपथ्य में पच महावाद्य शृग, रम्मट, शख, भेरी और जयघट बज रहे है और उनकी आती हुई मन्द-मन्द ध्वनि से रंगशाला मुखरित है। अर्धचन्द्राकार विशाल प्रेक्षक-गृह के दाहिने सिरे पर राज-वंश के बैठने की व्यवस्था है और बायें सिरे पर रगशाला में आने का महाद्वार। प्रेक्षक-गृह की बनावट बौद्ध काल के पूर्व की आर्य शिल्पकला के अनुसार है। स्थूल पाषाण-स्तम्भो पर प्रेक्षक-गृह की छत है, छत पर कंगूरे की पक्ति और प्रत्येक कगूरे पर स्वर्ण-कलश। भूमि पर रग-बिरगा सुन्दर बिछावन है। दाहिने सिरे पर स्वर्ण का रत्न-जटित सिहासन रखा है। सिहासन के दाहिनी ओर स्वर्ण की एक रत्न-जटित चौकी रखी है और बायीं ओर उससे कुछ नीची काष्ठ की एक चौकी है। सिहासन और चौकियो पर श्वेत वस्त्र से ढकी हुई गद्दियां बिछी है तथा तकिये लगे है। सिहासन पर धृतराष्ट्र विराजमान है। धृतराष्ट्र की दाहिनी ओर की चौकी पर भीष्म बैठे है और बायी ओर की चौकी पर विदुर। धृतराष्ट्र के सिर पर छत्र-वाहिका हाथी दांत की डांडी का श्वेत छत्र लगाये है, जो मोतियो की झालर से विभूषित है। दो चामर-वाहिकाएं स्वर्ण की डांडी वाले सुरागाय की पूछ के श्वेत चामर और दो व्यजन-वाहिकाएं चन्दन की डांडी वाले खस के व्यजन उन पर डुला रही है। सिहासन के पीछे एक ओर स्त्रियो के बैठने का प्रबन्ध है। दो स्वर्ण की रत्न-जटित चौकियो पर गान्धारी तथा कुन्ती बैठी है और अनेक काष्ठ की चौकियो पर अन्य स्त्रियां।

शेष प्रेक्षक-गृह में काष्ठ की चौकियाँ रखी है, जिन पर श्वेत वस्त्र से ढकी हुई गद्दियाँ बिछी है तथा तकिये लगे है। इन पर राज-वंश के अन्य व्यक्ति सामन्त-गण और प्रतिष्ठित नागरिक बैठे हुए है, अनेक व्यक्ति प्रेक्षक-गृह में खडे हुए भी है। धृतराष्ट्र की अवस्था लगभग ४० वर्ष है। वे गौर वर्ण के ऊँचे पूरे, सुडौल और बलवान शरीर के व्यक्ति है। सिर पर लम्बे केश, मुख पर चढी हुई मूछें और छोटी दाढी है। सारे बाल काले है। कौशेय वस्त्र का कामदार श्वेत उत्तरीय और उसी प्रकार का अधोवस्त्र धारण किये है। सिर पर किरीट, ग्रीवा में हार, भुजाओ पर केयूर, हाथो में वलय और अगुलियो में मुद्रिकाएँ है। समस्त आभूषण स्वर्ण के है और रत्नो से देदीप्यमान। धृतराष्ट्र की आँखें बन्द है, जिससे ज्ञात होता है कि वे अन्धे है। भीष्म की अवस्था लगभग ८५ वर्ष की है। वे भी गौर वर्ण के ऊँचे पूरे अत्यन्त बलिष्ठ शरीर के मनुष्य है। सिर के लम्बे बाल तथा मूँछें दाढी श्वेत हो गये है, परन्तु इस श्वेतता के अतिरिक्त वृद्धावस्था का और कोई भी चिह्न मुख अथवा शरीर पर नही है। भीष्म के वस्त्राभूषण धृतराष्ट्र के सदृश ही है। विदुर की अवस्था धृतराष्ट्र के बराबर है। वर्ण गेहुआँ है और शरीर वैसा बलवान नही। सिर और दाढी मूँछो के केश काले है। विदुर के उत्तरीय तथा अधोवस्त्र सूती है, और शरीर भूषणो से रहित। गान्धारी की अवस्था ३८ वर्ष की है। वे गौर वर्ण और सुन्दर मुख तथा बलिष्ठ एव ऊँचे पूरे शरीर की स्त्री है। कौशेय वस्त्र की कामदार केशरी साडी पहिने है और वैसा ही वस्त्र वक्षस्थल पर बाँधे है। उनके अग-प्रत्यगो में स्वर्ण के रत्न-जटित आभूषण है। नेत्रों पर श्वेत वस्त्र की एक पट्टी बँधी है, जिसके कारण वे कुछ देख नहीं सकतीं। कुन्ती की अवस्था गान्धारी के सदृश ही है। वे भी गौर वर्ण की सुन्दर स्त्री है, पर गान्धारी के सदृश ऊँची पूरी एव वैसी बलवती नहीं। उनके सौन्दर्य में मृदुता अधिक है। वे केवल एक वस्त्र श्वेत साड़ी पहिने है। वैधव्य के कारण सारा शरीर भूषणो से रहित है। अन्य स्त्रियाँ त ग

बाह्लिकों की वेश-भूषा गांधारी के सदृश है और शेष राजवंशजों, सामन्तों तथा पुरवासियों की धृतराष्ट्र के सदृश। रंगमंच रक्त वर्ण की पताकाओं और पत्र-पुष्प की वन्दनवारों से सजाया गया है। बीच-बीच में कदली के वृक्ष हैं। रंगमंच में एक ओर लोहे का एक वराह इधर-उधर दौड़ाया जा रहा है। दूसरी ओर लोहे की एक गाय खड़ी है, जिसका सिर शीघ्रता से हिल रहा है। इनके अतिरिक्त स्थान स्थान पर बाणों से वेधने के लिये अनेक कठिन और सूक्ष्म लक्ष्य बनाये गये हैं। रंगमंच के बीच में द्रोण और कृप खड़े हैं। दोनों की अवस्था लगभग ६५ वर्ष की है। दोनों गौर वर्ण के ऊँचे पूरे बलवान व्यक्ति हैं। सिर के लम्बे बाल और दाढ़ी मूँछें श्वेत होने के सिवा भीष्म के सदृश इन पर भी वृद्धावस्था का और कोई प्रभाव नहीं है। ये सूती श्वेत उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये हैं, आभूषण नहीं पहिने हैं, पर शस्त्रों से सुसज्जित हैं। इनकी दाहिनी ओर चार पांडव—युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव खड़े हैं तथा बायीं ओर दुर्योधन, दुःशासन एवं अश्वत्थामा। युधिष्ठिर की अवस्था २०, भीम की १९ और नकुल तथा सहदेव दोनों की १७ वर्ष की है। दुर्योधन और दुःशासन की अवस्था लगभग २० वर्ष की है। छहों राजपुत्र गौर वर्ण के हैं। शरीर ऊँचे पूरे तथा गठे हुए। भीम और दुर्योधन के शरीर कुछ स्थूल हैं। अश्वत्थामा की अवस्था लगभग २५ वर्ष की है और वह भी गौर वर्ण का ऊँचा पूरा सुन्दर व्यक्ति है। रंगमंच के बीच में अर्जुन अपनी अस्त्र-शस्त्र विद्या का प्रदर्शन कर रहा है। अर्जुन की अवस्था १८ वर्ष की है। ऊँचा पूरा बलिष्ठ शरीर ढला हुआ सा है। मुख तथा शरीर का सौन्दर्य और तेज समस्त राजपुत्रों से अधिक है। पांडव, दुर्योधन और दुःशासन एवं अश्वत्थामा सब लोहे के शिरस्त्राण और कवच धारण किये हैं तथा शस्त्रों से सुसज्जित हैं। अर्जुन आग्नेय अस्त्र से अग्नि उत्पन्न करता है, फिर वरुणास्त्र से पानी बरसा, उसे शान्त करता है। तदोपरान्त वायव्य चलाता है और पर्जन्यास्त्र से मेघों को लाता है। उसके पश्चात् भूमास्त्र

से भूमिखंड बनाता है और पर्वतास्त्र से पर्वतो को उत्पन्न करता है। अन्तर्धान अस्त्र से वह स्वयं गुप्त हो जाता है। फिर से वह प्रकट होता है। अब क्षण में दीर्घकाय, क्षण में लघु, क्षण में रथी और क्षण में सारथी, क्षण में गजारोही, क्षण में अश्वारोही और क्षण में पदाति के रूप में अपने को प्रदर्शित करता है। वह कठिन से कठिन तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म लक्ष-वेध भी करता है। रगमच में दौडते हुए लोहे के वराह के मुख की ओर पाँच वाण छोड़ता है, जो एक वाण के सदृश उसमें भर जाते है। फिर रगमच में खड़ी हुई गौ के दोनों शृगो के बीच में से (जो हिल रहे है) बिना गौ को किसी प्रकार का आघात पहुँचाये २१ वाण निकाल देता है।' और फिर वह खड्ग एव गदा के अनेक कौशलो का प्रदर्शन करता है। अर्जुन की प्रत्येक कृति पर रगशाला 'साधु! साधु!' शब्दो से गूँज उठती है तथा प्रेक्षक आश्चर्य से स्तम्भित से हो जाते है। दुर्योधन का मुख मलिन हो जाता है, और प्रेक्षको के प्रत्येक 'साधु' पर वह व्याकुल दृष्टि से दु शासन तथा अश्वत्थामा की ओर देख एक दीर्घ निश्वास छोड़ता है। अर्जुन के कृत्यों से उसके भाइयो, कुन्ती, भीष्म, द्रोण, कृप और विदुर को अत्यन्त प्रसन्नता होती है, जो उनकी मुख-मुद्राओं से जान पडती है। अर्जुन का कार्य समाप्त हो ही रहा है, तथा वह सर्वश्रेष्ठ वीर घोषित किया ही जाने वाला है कि रगशाला के महाद्वार पर भुजा पर दी हुई ताल सुनाई देती है, और तदुपरान्त कर्ण का प्रवेश। कर्ण की अवस्था २५ वर्ष की है वह गौर वर्ण और ऊँचे पूरे शरीर का मनुष्य है। मुख एवं शरीर के प्रत्येक अग से सौन्दर्य तथा तेज टपका सा पडता है। वह भी कवच तथा शिरस्त्राण धारण किये है, किन्तु उसका कवच एक अन्य ही प्रकार का है। साथ ही

'नोट—इन सब कौतुकों का वर्णन यहां महाभारत [illegible] अनुसार लिखा गया है। सिनेमा में जो [illegible] दिखाया जा [illegible] । [illegible] जो न दिखाया जा सके वह छोड़ दिया जाय।

उसी प्रकार के कुंडल हैं। वह शस्त्रों से भी सुसज्जित है। सारी रंगशाला में उससे अधिक सुन्दर एव तेजस्वी कोई व्यक्ति दृष्टिगोचर नहीं होता। प्रेक्षकगण स्थिर और कौतूहल भरी दृष्टि से एकटक कर्ण की ओर देखने लगते हैं। कुन्ती की दृष्टि उस पर पडते ही विशेष कर उसके कवच कुण्डलों को देख, वे एकाएक चौंककर स्तब्ध सी हो जाती हैं और उस पर से उनकी दृष्टि हटती ही नहीं। वे अपनी आँखों से कर्ण को पीती हुई सी जान पडती हैं। दुर्योधन उसके तेजस्वी स्वरूप से प्रभावित सा हो, आगे बढकर उसका स्वागत करना चाहता है, पर अश्वत्थामा उसे सकेत से रोक देता है। कर्ण रंगशाला को चारों ओर देखते हुए द्रोण तथा कृप के निकट आ उनका अभिवादन करता है और फिर एकटक अर्जुन की ओर देखता है।]

कर्ण—(अर्जुन से) पार्थ, तुमने जो कुछ दिखाया है मैं भी वह सब दिखा सकता हूँ, तुम्हारे गुरु यदि द्रोणाचार्य हैं तो मेरे परशुराम। प्रेक्षकगण देखें कि मैंने भी कुछ सीखा है या नहीं। (द्रोण की ओर घूमकर) आज्ञा है, आचार्य?

प्रेक्षकों में से कुछ—(एक साथ) हाँ, हाँ, दीजिए आज्ञा।

प्रेक्षकों में से कुछ—(एक साथ) अवश्य, अवश्य दीजिए।

[द्रोणाचार्य कुछ बोलते नहीं, पर सकेत से आज्ञा दे देते हैं। प्रेक्षकों का कौतूहल और बढ जाता है। दुर्योधन का मुख खिल उठता है, और भीम तथा अर्जुन के मुखों पर क्रोध के चिह्न दिख पड़ते हैं, पर वे कुछ बोलते नहीं। कर्ण अर्जुन के सदृश ही सारे कौशल दिखाता है, अर्जुन की अपेक्षा भी अधिक कुशलता से। प्रेक्षक बार बार 'साधु! साधु!' शब्दों का उच्चारण करते हैं। प्रत्येक 'साधु' पर दुर्योधन हर्ष से मुस्कराकर दुःशासन तथा अश्वत्थामा की ओर देखता है। अर्जुन के मुख पर अब लज्जा के चिह्न दिखायी देते हैं, एव भीम के मुख पर और अधिक क्रोध के। कुन्ती हर्षित हैं, परन्तु हठात् उनकी दृष्टि अर्जुन पर पडती है और अर्जुन की वेदना उनसे छिपी नहीं रहती। अब वे बार बार कभी कर्ण और कभी

अर्जुन की ओर देखती है। कर्ण की कृतियाँ और उसके प्रति उच्चारित साधुवाद से कुन्ती का मुख हर्षित हो उठता है, किन्तु अर्जुन की ओर उनकी दृष्टि घूमते ही, उसकी मुद्रा देख, कुन्ती का यह हर्ष विषाद में परिणत हो जाता है, एवं उनके मुख से दीर्घ निःश्वास निकल जाती है। कुन्ती के मुख पर अनेक बार हर्ष-विषाद का यह द्वन्द्व दृष्टिगोचर होता है। कर्ण का कार्य समाप्त होते होते तो दुर्योधन से रहा नहीं जाता और दुर्योधन झपटकर उसे हृदय से लगा लेता है। अर्जुन लज्जा तथा भीम क्रोध से तलमला उठते हैं। दुर्योधन के इस आलिंगन के बीच कर्ण की दृष्टि अर्जुन की लज्जित मुद्रा पर पड़ती है।]

दुर्योधन—(आलिंगन से मुक्त होते हुए) महाबाहो, तुम जो भी हो, मैं तुम्हारा हार्दिक स्वागत करता हूँ। (अर्जुन और भीम की ओर घूमते हुए) आज मैं धन्य हुआ। बन्धु, आज से मैं तथा मेरा सर्वस्व तुम्हारे अधिकार में होगा।

कर्ण—(अर्जुन की ओर देखते हुए) यह क्या कहते हो, कुरुराज, यदि मैं तुम्हारी कोई भी सेवा कर सकूँगा, तो अपने को धन्य मानूँगा। (अर्जुन से) कौन्तेय, मैंने वे सारे कृत्य दिखा दिये जो तुमने दिखाये थे, मैं समझता हूँ कि अस्त्र-शस्त्र विद्या में मैं तुम्हारी समानता का अधिकारी हूँ।

प्रेक्षकों में से कुछ—(एक साथ) अवश्य, अवश्य।

कर्ण—किन्तु इतने से ही मुझे सन्तोष नहीं है। हम दोनों में से कौन श्रेष्ठ है, इसका निर्णय हमारा द्वन्द्व युद्ध ही कर सकता है। [illegible] मांगता हूँ, धनंजय।

अर्जुन—(क्रोध से उत्तेजित हो) जो अनिमन्त्रित आते हैं, [illegible] बोलते हैं, उनका वध ही उचित पुरस्कार है। मैं द्वन्द्व [illegible] हूँ। (कर्ण की ओर बढ़ता है।)

कर्ण—(मुस्कराकर अर्जुन की ओर बढ़ते हुए) तुम [illegible]

हो रहे हो ? रगमच तो सबके लिए है, फाल्गुन, फिर मैंने आज्ञा लेकर अपने कृत्य दिखाये है।

[कुन्ती कांप उठती है। युधिष्ठिर का मुख चिन्ताग्रस्त हो जाता है। भीम कन्धे पर की गदा सँभालता है। दुर्योधन कर्ण का कन्धा थपथपाता है। प्रेक्षक-गण अत्यधिक आतुरता से दोनो की ओर देखते है।]

कृप—(आगे बढकर) ठहरो, अर्जुन। (अर्जुन रुक जाता है। कर्ण से) वीरवर, द्वन्द युद्ध के कुछ निश्चित नियम है। वह केवल बराबरी वालो मे हो सकता है। अर्जुन महाराजा पाडु और पृथा के तृतीय पुत्र है। उनका जन्म क्षत्रिय वर्ण के प्रख्यात कुरुवश मे हुआ है। तुम अपने माता-पिता का नाम बताओ। किस वर्ण मे, किस वश मे तुम्हारी उत्पत्ति हुई है, यह कहो। इसके पश्चात् निर्णय हो सकेगा कि अर्जुन का और तुम्हारा द्वन्द युद्ध हो सकता है या नही।

कर्ण—(गर्व से) वर्ण और वश! माता-पिता का नाम! वर्णो तथा वशो का द्वन्द होता है, या अर्जुन का और मेरा, आचार्य ? मेरी दृष्टि से तो आप अर्जुन के वर्ण, वश और माता-पिता का विवरण कर, अर्जुन का उल्टा अपमान कर रहे है। उन्हे गर्व होना चाहिए अपना और अपने पौरुष का। जन्म तो दैवाधीन है, आचार्य, हां, पौरुष स्वय के आधीन है। मुझे अपने कुल का परिचय देने की आवश्यकता ही नही, वह मेरे हाथ मे नही। मेरे हाथ मे है मेरा पौरुष, तथा मेरा पौरुष ही मेरा सच्चा परिचय है। यदि वर्ण और वश को महत्त्व है, तो वह तो भूतकाल को महत्त्व देना हुआ। अर्जुन को यदि अपने अतीत काल का गर्व है, तो मुझे है वर्तमान एव भविष्य का। मैं अपना वश बनाऊँगा, मैं अपना वर्ण बनाऊँगा। आचार्य, मैं अपने पूर्वजो के कारण प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित नही होना चाहता, मेरे वशज मेरे कारण यशस्वी होगे।

[कर्ण की गर्जना से रगशाला प्रतिध्वनित हो उठती है। कुछ देर को स्मशान सा हो जाता है]

दुर्योधन—(कुछ देर पश्चात् क्रोध से) आचार्य, राजा तीन प्रकार से बनते है—या तो किसी राज-कुल मे उत्पन्न हो, या वीर हो, या सेना एकत्रित कर उसका सचालन कर सके। जल से अग्नि हुई है, ब्रह्म-तेज से क्षत्रिय हुए है, पाषाण से लोहा हुआ है, किन्तु तीनो मे शक्ति के समान तत्व है। (कर्ण की ओर सकेत कर) यह वीर कौन है, मै नही जानता, पर अपने वीरत्व के कारण राजा होने की क्षमता रखता है।

द्रोण—राजा होने की क्षमता रखना एक बात है, और राजा हो जाना दूसरी। दुर्योधन, नियमानुसार राज-पुत्र से राजा या राज-पुत्र ही युद्ध कर सकता है। यदि वह वीर राजा या राज-कुल मे उत्पन्न नही है, तो मै इस युद्ध की आज्ञा नही दे सकता।

दुर्योधन—(कुछ विचारते हुए) ऐसा! अच्छी बात है, आचार्य, तो मै पिताजी से आज्ञा ले इस वीर को अग देश का राज्य देता हूँ। (दु शासन से) दु शासन, तुम अभिषेक की सामग्री तत्काल उपस्थित करो।

[दुर्योधन धृतराष्ट्र की ओर बढता है। दु शासन शीघ्रता से महाद्वार से बाहर जाता है। रगशाला में फिर सन्नाटा छा जाता है। कुन्ती एकटक कर्ण की ओर देखती है]

दुर्योधन—(धृतराष्ट्र के निकट जाकर) तात, रगशाला मे आज एक अद्वितीय वीर उपस्थित हुआ है। कुरुवश मे सभी ने विद्वानो एव वीरो का सदा ही समुचित आदर किया है। आपकी आज्ञा से मै उस वीर को अग देश का राज्य देना चाहता हूँ।

[धृतराष्ट्र मुख से कुछ न कह, स्वीकृति में सिर हिला देते है। भीष्म एक विकृत दृष्टि से दुर्योधन और फिर धृतराष्ट्र की ओर देखते है। रगशाला 'धन्य है! धन्य है!' शब्दो से गूंज उठती है। दुर्योधन कर्ण के निकट लौटता है। दु शासन का प्रवेश। उसके साथ स्वच्छ वस्त्रो मे दो दास आते है। जिनके सिर पर सुवर्ण के दो थाल रखे है। एक मे कुकुम, अक्षत, जल, कलश, कुश आदि है, दूसरे मे किरीट, हार इत्यादि। [illegible]

कर्ण के ललाट पर कुंकुम का तिलक लगा उसे आभूषण पहिनाता है। कुन्ती का मुख हर्ष से खिल जाता है।]

दुर्योधन—(कुश से कर्ण के सिर पर जल सींचते हुए) आज से तुम अंग देश के राजा हुए।

प्रेक्षकों में से कुछ—(एक साथ) साधु ! साधु !

कर्ण—(गद्गद् स्वर से) कुरुराज, तुमने मुझे राजा तो बना दिया, परन्तु परिवर्तन में देने को मेरे पास क्या है ?

दुर्योधन—तुम्हारी गाढ़ मैत्री के अतिरिक्त और मुझे कुछ नहीं चाहिए। अंगराज, तुम सदा मेरे मित्र रहो, यही मैं चाहता हूँ।

कर्ण—अपनी ओर से वचन देता हूँ। विश्व की कोई भी शक्ति आजन्म मुझे तुमसे न विमुख कर सकेगी और न पृथक्, और मेरी सारी शक्ति सदा तुम्हारे काम आवेगी।

[दुर्योधन कर्ण को फिर से हृदय से लगा लेता है। उसी समय महाद्वार से वृद्ध अधिरथ का प्रवेश। अधिरथ अत्यन्त वृद्ध होने से लाठी टेकते चल रहा है। वह एक सूती उत्तरीय तथा अधोवस्त्र धारण किये है। जल्दी जल्दी चलने के प्रयत्न के कारण वह हाँफने लगा है, एवं उसके शरीर से पसीना निकल रहा है। कर्ण पिता को आते देख उस ओर बढ़ता है। दुर्योधन क्रुद्ध आश्चर्य में उसे रोकना चाहता है, पर कर्ण न रुक कर अधिरथ के पास पहुँच उसके चरणों में सिर झुकाता है। अधिरथ उसे हृदयसे लगा लेता है। अधिरथ के नेत्रों से अश्रुधारा बह निकलती है और उसके मुख से केवल एक शब्द निकलता है—"पुत्र !"]

भीम—(आगे बढ़कर) ओह ! तो यह सारथी अधिरथ का पुत्र है। (कर्ण से) रे सूत, तू अर्जुन से द्वन्द्व युद्ध चाहता था ! यह महत्त्वाकांक्षा ! यह साहस ! अरे, तू तो अर्जुन के हाथ से मृत्यु और वह भी रणभूमि के योग्य नहीं। जा, जा, अपने कुलधर्म के अनुसार प्रतोद लेकर रथ पर बैठ सारथी-धर्म से जीविका चला। सूत को राजा नहीं बनाया

जा सकता। यज्ञ की पूर्णाहुति के पश्चात् भी पुरोडाश प्रसाद रूप से कहीं श्वान को मिलती है!

कर्ण—(गरज कर) इसका इतना ही उत्तर है, भीम, कि अर्जुन से निपटकर तुम्हें भी द्वन्द युद्ध का निमन्त्रण है।

दुर्योधन—क्या वृथा की बकवाद कर रहे हो, वृकोदर। ये बातें तुम्हें शोभा नहीं देते। क्षत्रिय पराक्रम को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, अन्य किसी वस्तु को नहीं। शूर तथा नदी के उद्गम स्थान का कठिनाई से पता लगता है और लगाना भी न चाहिए। हमारे आचार्य द्रोण घट से उत्पन्न हुए हैं। दूसरे आचार्य कृप के पूर्वज गौतम का शरस्तम्भ से प्रादुर्भाव हुआ था। तुम्हारे जन्म का रहस्य भी मैं जानता हूँ। फिर इन बातों में क्या रखा है। अरे, यह महावीर अंग देश की तो बात ही क्या, सारी पृथ्वी का चक्रवर्ती सम्राट् होने योग्य है। छोड़ो ये बातें और अर्जुन तथा इन्हें अपने पराक्रम का परिचय अपने बाहुओं से देने दो। कौन किसका पिता है और कौन किसका पुत्र, यह प्रश्न ही नहीं है।

प्रेक्षकों में से कुछ—(एक साथ) धन्य है! धन्य है!

प्रेक्षकों में से कुछ—(एक साथ) साधु साधु! साधु साधु!

[अर्जुन और कर्ण फिर एक दूसरे की ओर बढ़ते हैं। कुन्ती चिन्तित हो दोनों की ओर देखती है।]

द्रोण—(आकाश की ओर देख, आगे बढ़कर) परन्तु सायंकाल हो गया, अब रंगशाला में कोई कार्यक्रम नहीं चल सकता।)

यवनिका

पहिला अंक

पहिला दृश्य

स्थान—हस्तिनापुर मे कर्ण के भवन का एक कक्ष

समय—रात्रि

[विशाल कक्ष है। तीन ओर की भित्तियो में अनेक द्वार हैं, जिनकी चौखटें और किवाड चन्दन के काष्ठ के हैं और इन पर यत्र-तत्र हाथीदांत लगा हुआ है। इन द्वारो से ज्योत्स्ना कक्ष में आ रही है। भित्तियो एवं कक्ष की छत पर सुन्दर चित्रकारी है। कक्ष की धरती पर रग बिरंगी बिछावन बिछी है, जिस पर अनेक स्वर्ण की रत्न-जटित चौकियां रखी हैं। चौकियो पर श्वेत वस्त्र से ढकी हुई गद्दियां बिछी हैं, तथा तकिये लगे हैं। ऊंची ऊंची स्वर्ण की दीवटो पर दीपक रखे हैं, जिनमें सुगन्धित तैल जल रहा है, और अनेक ऊंची ऊंची स्वर्ण की धूपदानियो से सुगन्धित धूप उड रहा है। कर्ण एक स्वर्ण की चौकी पर बैठा हुआ, अपने सामने पृथ्वी पर रखी हुई दो हाथ लम्बी एक हाथ चौडी काष्ठ की एक मजूषा (पेटी) को एकटक देख रहा है। कर्ण श्वेत कौशेय वस्त्र के कामदार उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये है तथा विविध प्रकार के रत्नजटित सुवर्ण के आभूषणो से अलकृत है।]

कर्ण—(कुछ देर तक मजूषा को देखते-देखते, मंजूषा को ही सम्बोधन कर) [illegible] मजूषा, पिता अधिरथ कहते हैं मैं यथार्थ मे उनका पुत्र नही [illegible] माता राधा इसका समर्थन करती है। दोनो कहते हैं—मैं [illegible] बहता हुआ आया, उन्हे मिला, और सूर्योपासना का [illegible] करते [illegible] भगवान् भास्कर ने स्वप्न मे दर्शन देकर कहा कि मैं [illegible] और कुन्ती का पुत्र हूँ, [illegible] प्रज्वलित अग्नि एव उठती हुई

शीतल जलोर्मि का पुत्र ! क्या यह सम्भव है ? कहा तो सूर्य ने यह स्वप्न मे ही है । (कुछ रुक कर) सूर्य का पुत्र ! क्या यह भी हो सकता है ? (कुछ रुक कर) जो कुछ हो, किन्तु आज मै सूत अधिरथ और राधा का ही पुत्र हूँ । ... संसार यही जानता है, तथा सदा यही मानेगा । ... जिस दिन तुझ मे बन्द किया गया, उस दिन चाहे नवजात शिशु, हां, नवजात शिशु होऊँ, पर शैशव ही नही, उसी दिन से मेरा सारा जीवन तुझ मे बन्द कर दिया गया है । ... क्षत्रिय से सूद्र, मै तेरे ही कारण हुआ ... सृष्टि मे सबसे अधिक तेजस्वी सूर्य एवं मानव जगत् मे सबसे अधिक सुन्दर कुन्ती का पुत्र होने पर भी तेरे कारण अधिरथ और राधा का पुत्र कहलाया । . . तुझ से बाहर निकल आने पर भी तू ... तू ही मेरे सारे जीवन को वेष्टित किये हुए है, मृत्युपर्यन्त किये रहेगी, ... और कदाचित् मृत्यु के उपरान्त भी । (उठकर खड़े हो, इधर उधर घूमते हुए) पर मेरे पौरुष के कारण यह न हो पावेगा । (कुछ रुककर) संसार के अनेक महज्जनो के जनकों का ठीक पता नही रहता । राम दशरथ से उत्पन्न न होकर यज्ञ की क्षीर से जन्मे । कृष्ण के पिता वसुदेव है या नन्द, यही निर्णय न हो सका । सीता घट से निकली । पाण्डवों के सच्चे पिता कौन है, कोई नही जानता । मेरे माता-पिता का भी ठीक पता नही । (फिर बैठकर पहिले अपने कुंडलों पर हाथ रख तथा फिर उन्हें कवच पर फेरते हुए) और महान् ... महान् मै कैसे नही ? ... मेरे अतिरिक्त ऐसे कुंडल, कवच सृष्टि मे किसे मिले है, जिससे मैं कहा जाता हूँ — मृत्युंजय । (फिर कुछ रुककर) सूर्य मेरे पिता और कुन्ती मेरी माता हो या न हो, पर ... पर ... उस स्वप्न-दर्शन ने यह विश्वास दिला दिया है कि सूर्य ही मेरे पिता है और कुन्ती ही मेरी माता । ... उस वरदान ने महत्त्वाकांक्षा को जन्म दिया, तथा ... [illegible] ने त्याग करने वाली ममता रहित मेरी माता के प्रति [illegible] घृणा को । (फिर उठकर इधर उधर घूमते हुए) [illegible]

सूत ही होऊँ तो ? तो ... तो भी क्या हुआ ? आर्य और सूत कहे जाने वाले व्यक्तियो मे अन्तर क्या है ? वरन ये आर्य तो दिन प्रति दिन पतित ... महान् पतित होते जा रहे है। (फिर कुछ रुककर) परन्तु ... परन्तु फिर इतनी उद्विग्नता क्यो ? ... अनजाने नही, पर जान बूझकर भी जो करता हूँ, उससे दु ख क्यो ? (फिर कुछ रुककर) एक ओर दान देने से सन्तोष होता है, तो दूसरी ओर हरण करने की इच्छा होती है, और उनसे उल्टा दु ख। एक ओर सुख पहुँचाने से शान्ति मिलती है, तो दूसरी ओर दु ख देने की उत्कठा होती है; और उससे उल्टी उद्विग्नता। (फिर बैठकर) समझ मे नही आता कि प्रतोद लेकर रथ पर सूत बने रहने मे अधिक सुख मिलता या इस जीवन मे मिल रहा है ? (मंजूषा की ओर देखते देखते चुप हो जाता है।)

[रोहिणी का प्रवेश। रोहिणी की अवस्था लगभग २५ वर्ष की है। वह साधारणतया सुन्दर स्त्री है। कौशेय की साड़ी पहिने है और उसी प्रकार का वस्त्र वक्षस्थल पर बांधे है। उसके सारे अंगो में देदीप्यमान रत्नो के आभूषण है।]

रोहिणी—आज फिर इस मजूषा को देख रहे है, नाथ, कितने बार इसे देखते है ?

कर्ण—बहुत समय तक इसे देखे बिना मुझ से रहा ही नही जाता, प्रिये ! और रहा जाए भी कैसे ? जानती हो इसका कारण ?

रोहिणी—कौन सा, प्राणेश ?

कर्ण—बहुत चिन्तन के पश्चात् आज ही मैने इसका कारण जान पाया है। यह मजूषा मेरे जीवन मे सबसे अधिक महत्त्व रखती है। ऐसी वस्तु के बारम्बार दर्शन की अभिलाषा स्वाभाविक ही है।

रोहिणी—(आश्चर्य से) यह मजूषा आपके जीवन मे सबसे अधिक [illegible] है ! मै तो समझती थी कि मै आपके जीवन मे सबसे अधिक [illegible] हूँ।

कर्ण—सो तो है ही, पर इस मंजूषा का एक दूसरी प्रकार का महत्व है।

रोहिणी—कैसा ?

कर्ण—यह किसी ठीक अवसर पर तुम्हे आप से आप ज्ञात हो जायेगा।

रोहिणी—(कर्ण के निकट एक चौकी पर बैठ, उसका मुख ध्यान से देखते हुए) आज फिर उद्विग्न दिखते है, नाथ, पहिले भी आप कभी-कभी उद्विग्न हो जाते थे, पर इन चार वर्षों के एक युग मे जब से आप राजा हुए है, तब से तो, मै देखती हूँ कि यह उद्विग्नता कही अधिक बढ़ गयी है।

कर्ण—सुयोधन की कृपा से मै राजा अवश्य हो गया हूँ। सुयोधन ने एक नयी बात की, जैसी बात इसके पूर्व कभी किसी ने न की थी, ऐसा साहसी कृत्य जैसा कि एक युग के पूर्व किसी के करने का साहस न हुआ था। भारतीय समाज-रचना मे सूत राजा! परन्तु इतना पर भी, प्रिय, मुझे सुख नही। कदाचित् कभी मिलेगा भी नही।

रोहिणी—आश्चर्य की बात है, प्राणनाथ। राज-कार्य का आप जिस तरह पालन करते है वैसा कदाचित् इस समय एक भी राजा नहीं करता। फिर इहलोक के साथ परलोक का भी आपको उतना ही ध्यान है। नित मध्याह्न से अपराह्न तक आप सूर्योपासना करते है। ब्राह्मण जो भी याचना करते है, उसे देना आपकी प्रतिज्ञा है। [illegible], ऐसे दानी पुरुष दुखी, उद्विग्न!

कर्ण—तुम मेरी अधिकांश उद्विग्नताओं का कारण जानती हो? सब षड्यन्त्र रुचिकर नहीं। पाण्डवों को लाक्षागृह मे भस्म करने के [illegible] से मुझे कितना कष्ट पहुँचा था, यह तुम्हें ज्ञात है।

रोहिणी—हाँ, मुझे भली भांति स्मरण है। [illegible] है उतने कदाचित् [illegible]। [illegible] की रचना हो रही है?

कर्ण—हाँ, फिर एक षड्यन्त्र रचा जा रहा है।

रोहिणी—पाण्डवों के लिए?

कर्ण—और किसके लिए होगा।

रोहिणी—कैसा ?

कर्ण—पाडव द्यूत खेलने के लिए बुलाये जाने वाले है। गाधार-नरेश शकुनि आये है। द्यूत के छल करने मे ऐसा सिद्धहस्त कोई न होगा। पाडवो का सर्वस्व इस द्यूत मे जीता जाने वाला है।

रोहिणी—ओह !

[रोहिणी सिर नीचा कर लेती है। कर्ण भी कुछ देर चुप रहता है, कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

कर्ण—प्रिये, चार वर्ष पहिले जब रगशाला मे सुयोधन ने मुझे राजा बनाया और उन्हे आजन्म उनका साथ देने का मैने वचन दिया, उस समय भीम सुयोधन को जिस प्रकार के कष्ट देता था, वे वृत्त मैने सुने थे।

रोहिणी—हॉ, खेलते-खेलते उन्हे पानी मे ढकेल देना, पैर पकड कर पानी मे ही खीचते हुए ले जाना, भित्ति पर से उन्हे धक्का देना, फिर उनके कन्धे पर उनके शरीर पर कूदना, इस प्रकार के न जाने कितने वृत्त मै भी सुन चुकी हूँ।

कर्ण—अरे ! भीम सुयोधन को जीवित मनुष्य नही, निर्जीव कन्दुक समझता था, तथा अर्जुन अपने पराक्रम के सामने किसी को कोई वस्तु मानता ही न था। अत कौरवो के निर्बल होने के कारण, मेरी सहानुभूति कौरवो से थी। फिर सुयोधन भी कुरुवश के ही है, वरन् मै तो उन्हे ही राज्य का सच्चा उत्तराधिकारी मानता हूँ। धृतराष्ट्र पाडु से बडे थे। नेत्रो से रहित होने के कारण उन्होने स्वय राज-पाट का कार्य पाडु को दे दिया था। मेरे सुयोधन के निर्बल एव राज्य के सच्चे अधिकारी मानने तथा सुयोधन के मुझे राजा बना देने के कारण यह मैत्री हुई। मै उस समय न जानता था कि यह मैत्री भी मेरे भावी दुखो का कारण हो जायेगी।

[कर्ण चुप हो फिर एकटक उस मजूषा को देखने लगता है, कर्ण की ओर। कुछ देर निस्तब्धता।]

कर्ण—(रोहिणी की ओर देखकर) प्रिये, एक बात

रोहिणी—बताइए, नाथ ?

कर्ण—जब मैं शान्ति से सोचता हूँ, उस समय मुझे षडयन्त्र जितने बुरे लगते हैं, उतने उस समय नहीं, जब इनका विचार किया जाता है। उस समय तो मैं इन षडयन्त्रों में भी सुयोधन का सहायक हो जाता हूँ। सुयोधन के सम्मुख तो मुझ से इन षडयन्त्रों का भी विरोध नहीं होता।

रोहिणी—(गभीरता से विचारते हुए) कदाचित् इसलिए, नाथ कि उन्होंने आपका इतना उपकार किया है।

कर्ण—(विचारते हुए) इसलिए ? ....हाँ, इसलिए भी, और .... (फिर मजूषा को देखते हुए) और इस मजूषा के कारण भी।

रोहिणी—(आश्चर्य से) यह मजूषा....यह मजूषा.... ।

[कुछ देर निस्तब्धता।]

रोहिणी—(एकाएक उठकर कर्ण की चौकी के किनारे पर बैठते हुए) छोड़िए....छोड़िए ...यह दुःख, प्राणनाथ। यदि सुयोधन इस प्रकार के षडयन्त्रों में प्रवृत्त हैं, तो पाण्डव कहाँ के देवता हैं ? अभी राजसूय यज्ञ में जब पाण्डवों के मायामय भवन में सुयोधन जल में गिर पड़े थे उनके प्रति सहानुभूति का प्रदर्शन तो दूर रहा, द्रौपदी उल्टा हँसकर बोली—'अन्धों के अन्धे ही होते हैं।' फिर जल में भीम ने फन्दे लगा रखे थे, जिनमें सुयोधन फँस जायँ और उन फन्दों में सुयोधन को [illegible] हँसने का भीम को अवसर मिले।

कर्ण—पर इन सब झगड़ों का निपटारा तो [illegible] जो खुला है। मैंने सुयोधन से कहा भी कि अर्जुन से मैं [illegible] करने की क्षमता रखता हूँ, पर वे सीधा मार्ग छोड़ टेढ़े मार्गों [illegible] और इन टेढ़े मार्गों में भी मैं उनका सहायक रहता हूँ। ([illegible]) सहायता तो करता हूँ, [illegible] का कारण हो जाती है।

रोहिणी—(एकाएक खडे होकर) किन्तु नाथ, कौरव और पाडवो के ये चरित्र आपके लिए तो प्रसन्नता के कारण होने चाहिए।

कर्ण—(कुछ आश्चर्य से रोहिणी की ओर देखते हुए) ये मेरी प्रसन्नता के कारण ?

रोहिणी—अवश्य।

कर्ण—यह कैसे ?

रोहिणी—(गर्व से) यह ऐसे कि वे अपने आपको श्रेष्ठ, उच्च वर्णीय, उच्च कुलावतस समझते है और हमे नीच, सूत, दास। अपने को समस्त अधिकारो से सम्पन्न और हमे केवल दासत्व करने के योग्य। हम निर्जीव सम्पत्ति के भी अधिकारी और उत्तराधिकारी नही हो सकते, पर वे हमारे जीवित शरीरो के भी स्वामी, अरे, हमारे पुत्रो, पौत्रो, प्रपौत्रो, सारी भावी पीढियो तक के। देखें वे अपनी पतितावस्था और आपकी महानता। आपकी वीरता देखे, आपकी उदारता देखे, आपके भावो को देखे, आपके कर्मों को देखे। छोटे से छोटा षडयन्त्र आपके हृदय को ठेस पहुँचाता है, तनिक सा आडा टेढा मार्ग उद्विग्न कर देता है। आज किस क्षत्रिय मे आपका सा पराक्रम है ? कौन क्षत्रिय आपका सा दानी है ? किसे ऐसी कृतज्ञता एव मैत्री का ध्यान है ? आपके पिता सूत अधिरथ को धन्य है। आपकी माता सूत राधा को धन्य है। आपकी सूत पत्नी मुझे धन्य है। आपने प्रमाणित कर दिया, नाथ, कि ससार मे जन्म को नही, कर्म को महत्त्व है।

[रोहिणी एकटक कर्ण की ओर देखती है और कर्ण कभी रोहिणी तथा कभी मजूषा की ओर।]

लघु यवनिका

दूसरा दृश्य

स्थान—इन्द्रप्रस्थ मे पाडवो के महल का एक कक्ष

समय—प्रात काल

[यह कक्ष भी प्राय उसी ढग से बना है जैसा हस्तिनापुर मे कर्ण के भवन का कक्ष था । भित्तियो एव छत की चित्रकारी मे अन्तर है । कक्ष की सजावट भी वैसी ही है । पाँचो पाडव तथा द्रौपदी चौकियो पर बैठे हुए हैं । पाडव कामदार कौशेय वस्त्र के उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये हैं तथा आभूषणो से अलकृत हैं । द्रौपदी की अवस्था लगभग २० वर्ष की है । उसका वर्ण साँवला है, फिर भी वह अत्यन्त [illegible] लगती है । कौशेय वस्त्र की कामदार साड़ी पहिने है और वैसा ही [illegible] पर बाँधे है । रत्न-जटित आभूषणो से उसके अग सुशोभित हैं ।]

भीम—(युधिष्ठिर से) हाँ, महाराज, [illegible] और का नहीं हो सकता, यह युद्ध हुए बिना न रहेगा ।

नकुल—हाँ, हमारा राज्य है, दुर्योधन का नहीं ।

सहदेव—अवश्य, धृतराष्ट्र कभी राजा नहीं [illegible] उनकी अकालिक मृत्यु [illegible] आपके वचन [illegible] देख रहे थे ।

द्रौपदी—(मुस्कराकर) परन्तु आज आप [illegible] सच्चे राजा हैं ।

भीम—नहीं, नहीं, उनका पद ।

युधिष्ठिर—[illegible] न हो, भीम, (कुछ आगे [illegible]) [illegible] न हो तुम व्यग्र । राज्य पर हमारा अधिकार है, [illegible] कृत किया ? कौन चक्रवर्ती राजा है, उसका प्रमाण [illegible] वह मैंने किया, दुर्योधन ने नहीं । धृतराष्ट्र ने उन[illegible]

अर्जुन—महाराज, राजा कौन है, यह यज्ञ आदि प्रदर्शन के कार्य से प्रमाणित नहीं होता। सच्चा अधिकार जिसके हाथ मे होता है यथार्थ मे राजा वह होता है। हस्तिनापुर मे बैठे हुए, दुर्योधन सारे राज्य का [illegible] करे और हम इन्द्रप्रस्थ मे बैठे-बैठे यज्ञ कर करके यह सोचे कि हम चक्रवर्ती राजा है, प्रसन्न हो, यह तो अपने आपको धोखा देना है।

भीम—अवश्य।

द्रौपदी—इसमे भी कोई सन्देह है ?

अर्जुन—स्मरण कीजिए, रंगशाला मे हमारी अस्त्र-शस्त्र परीक्षा के दिन की एक घटना को। उस दिन वसुषेण को दुर्योधन ने किस प्रकार [illegible] राजा बना दिया। आप किसी को उस प्रकार राज दे सकते है ?

नकुल—फिर वह सूत था, सूत।

सहदेव—और सारे क्षत्रिय बैठे-बैठे उस घटना को देखते रह गये, किसी का [illegible] करने का साहस न हुआ।

भीम—अरे, सब दुर्योधन के साथ है, आपके साथ एक भी नही।

युधिष्ठिर—कुरुवंश के सबसे महान् वीर तथा सबसे प्रकाड पडित भीष्म पितामह, आचार्य द्रोण, आचार्य कृप सब मेरे साथ है, सुयोधन के नही।

भीम—भीष्म पितामह, द्रोण और कृप, ये भी सब दुर्योधन के साथ [illegible] नहीं।

युधिष्ठिर—(कुछ आश्चर्य से) ये सब दुर्योधन के साथ !

भीम—हाँ दुर्योधन के साथ। आपसे मीठी-मीठी बाते करते है, पर [illegible] करते है दुर्योधन का।

युधिष्ठिर—[illegible] तो नहीं जचता।

भीम—युद्ध [illegible] बता देगा कि ये सब किसके पक्ष मे युद्ध करते है।

युधिष्ठिर—[illegible] युद्ध होगा, पर तुम अनिवार्य क्यो मानते हो, भीम ?

भीम—[illegible] असीम है, सहनशक्ति ससीम, हमने लाक्षा-[illegible] लिया आगे और न सह सकेगे।

युधिष्ठिर—किन्तु वह अग्नि सुयोधन ने लगवाई थी, इसका कोई प्रमाण है ?

अर्जुन—प्रमाण ! महाराज, आप ऐसी बातों का भी प्रमाण चाहते हैं ? क्या कहूँ ?

द्रौपदी—महाराज, वह भवन ही इसलिए बनाया गया था कि आप लोग भस्म हो जायें।

युधिष्ठिर—(मुस्कराकर) पांचाली, तुम तो उस समय पांचाल में निवास करती थीं, कुरुदेश में नहीं।

द्रौपदी—परन्तु उसके थोड़े ही दिन पश्चात् मैंने यहाँ आकर सारा वृत्त सुना है।

युधिष्ठिर—और किसी सुनी हुई बात को, बिना किसी प्रमाण के, तुम सत्य मान लेना चाहती हो ?

भीम—मुझे विष दुर्योधन ने दिलाया था, यह भी मिथ्या है ?

युधिष्ठिर—यह कदाचित् सत्य हो।

भीम—'कदाचित,' महाराज ?

युधिष्ठिर—हाँ, कदाचित इसलिए कि उसका भी, तुमने उस दिन दुर्योधन के यहाँ भोजन किया था, उसके सिवा अन्य कोई प्रमाण नहीं है।

अर्जुन—महाराज, ऐसी बातों के पक्के प्रमाण कभी नहीं मिलते। वृकोदर को दुर्योधन ने ही विष दिलाया। हम सब को भस्म करने के लिए ही लाक्षा-भवन बना और दुर्योधन ने ही उसमें आग लगवाई। यदि विदुर ने कौशल से उस भवन में गुप्त मार्ग न बनवा दिया होता, तो हम में से एक भी उस भीषण अग्नि से बचकर नहीं निकल सकता था।

युधिष्ठिर—तो हम ने तो विदुर के सदृश महात्मा [illegible]
इतना तो तुम लोग भी मानते हो।

भीम—किन्तु, महाराज, विदुर का [illegible]
ही है। वे दासीपुत्र हैं, [illegible]

युधिष्ठिर—और सुयोधन का सबसे बड़ा सहायक वसुषेण भी सूतपुत्र है।

भीम—परन्तु, उसमे पराक्रम है, महाराज वह शक्तिशाली है, विदुर केवल मतिमान। विना शक्ति के केवल बुद्धि थोथी वस्तु है। कुरुदेश मे हम पांच को छोड़कर शेष सारे शक्तिशाली व्यक्ति दुर्योधन के साथ है। दुर्योधन हमारा राज्य हड़पकर, विना डकार तक लिये पचाकर, हमे गली-गली का भिखारी बनाना चाहता है, सम्भव हो तो हमारे प्राण तक ले लेना चाहता है। मै कहता हूं युद्ध होगा, युद्ध अनिवार्य है। और जितना विलम्ब इसमे हो रहा है, उतना ही अधिक वह बलशाली होता जा रहा है तथा हम निर्बल।

युधिष्ठिर—पर यह गृह-युद्ध, यह भाई-भाई का युद्ध। रघुवंश का इतिहास स्मरण करो, वृकोदर।

भीम—रघुवंश! महाराज रघुवंश त्रेता मे हुआ था, यह द्वापर का अन्त तथा कलियुग का प्रारम्भ है। युग-युग के धर्म पृथक्-पृथक् होते है।

युधिष्ठिर—और युद्ध का परिणाम हमारे पक्ष मे शुभ होगा, यह तुम लोग कैसे कह सकते हो? (विचारते हुए गम्भीरतापूर्वक अर्जुन से) उस दिन रंगशाला की घटना का स्मरण नही है? वसुषेण का पराक्रम, उसकी शक्ति भूल गये?

अर्जुन—(क्रोध से) न जाने उसे आप क्यो इतना शक्तिशाली समझते है। मै क्षण मात्र मे उसका वध करने का पुरुषार्थ रखता हूं। उस दिन रंगशाला मे द्वन्द्व युद्ध नही हुआ, अन्यथा मै अपने एवं उसके पराक्रम का अन्तर बता देता। कहां मै क्षत्रिय और कहां वह सूत!

युधिष्ठिर—(विचारते हुए) हां, वह सूत [illegible] सूत अवश्य है। किन्तु [illegible] किन्तु अर्जुन, वह साधारण सूत नहीं। उसके कुण्डल, कवच के [illegible] किसी के कुण्डल, कवच तुम में से किसी ने देखे है? सुना है कि वह [illegible] वह

[प्रतिहारी का प्रवेश।]

प्रतिहारी—(अभिवादन कर) महाराज, हस्तिनापुर से दूत आया है और सेवा में उपस्थित होना चाहता है।

युधिष्ठिर—ले आओ, प्रतिहारी।

[प्रतिहारी का अभिवादन कर प्रस्थान।]

युधिष्ठिर—देखें, कौनसा नया संवाद आता है।

भीम—हस्तिनापुर से किसी शुभ संवाद की तो आशा ही न करनी चाहिए।

[प्रतिहारी का दूत के साथ प्रवेश और दूत को छोड़ अभिवादन कर प्रस्थान। दूत अभिवादन करता है।]

युधिष्ठिर—(अभिवादन का उत्तर दे) स्वागत, दूत। कहो, महाराज धृतराष्ट्र तो प्रसन्न हैं? माता गांधारी का स्वास्थ्य तो अच्छा है? युवराज दुर्योधन तो भाइयों के संग कुशलपूर्वक हैं?

दूत—(भूमि पर बैठते हुए) सब प्रसन्न हैं, श्रीमान्, और सब ने आपकी कुशलता पूछी है।

युधिष्ठिर—यहाँ भी भगवान् की दया है, दूत, कहो और क्या आज्ञा [illegible] ?

दूत—गांधार-नरेश शकुनि पधारे हैं, महाराज। उन्हें द्यूत से थोड़ा [illegible] है। क्षत्रिय समाज का यह प्रधान कौतुक है। आगामी [illegible] है। महाराज धृतराष्ट्र ने कहलाया है कि उस [illegible] पधार सकें तो उन्हें परम हर्ष होगा।

युधिष्ठिर—[illegible] अत्यन्त प्रसन्नता से। द्यूत से [illegible] और फिर सामाजिक परिपाटी के अनुसार कौन [illegible] को अस्वीकार कर सकता है।

[[illegible] और द्रौपदी एक दूसरे की ओर देखते हैं]

[illegible]

तीसरा दृश्य

स्थान—हस्तिनापुर के राज प्रासाद का सभाकक्ष

समय—अपराह्न

[एक विशाल कक्ष है, जिसकी तीन ओर की भित्तियाँ चित्रकारी से विभूषित दिखायी देती हैं। भित्तियों में अनेक द्वार हैं, जिनकी चौखटें और कपाट चन्दन के हैं और हाथीदाँत से सुसज्जित। कक्ष की छत पाषाण के धारीदार स्थूल स्तम्भों पर है और कक्ष की भूमि पर रंग-बिरंगा बिछावन बिछा है। बिछावन पर पीछे की भित्ति के अत्यन्त समीप सुवर्ण का रत्न-जटित सिंहासन है। सिंहासन के उभय ओर सुवर्ण की रत्न-जटित गद्दी-तकियों से युक्त अनेक चौकियाँ रखी हैं। सिंहासन पर धृतराष्ट्र और चौकियों पर भीष्म, द्रोण, कृप और विदुर बैठे हैं। धृतराष्ट्र पर छत्र-धारिका छत्र लगाये है एवं चामर तथा व्यजन धारिकाएँ चामर और व्यजन डुला रही हैं। कक्ष के बीच में एक नीची सी सुवर्ण की चौकी पर चीतर बिछी है। इस चौकी के दाहिनी तथा बायीं ओर सुवर्ण की अनेक रत्न-जटित गद्दी तकियों से युक्त चौकियाँ रखी हैं। दाहिनी ओर की चौकियों पर युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव बैठे हैं और बायीं ओर की चौकियों पर दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण, अश्वत्थामा और शकुनि। शकुनि की अवस्था लगभग ३५ वर्ष की है। [illegible] गौर वर्ण का ऊँचा पूरा व्यक्ति है। लम्बे बाल हैं और ऊपर को चढ़ी हुई मूँछें। [illegible] अन्य कौरवों के सदृश ही है। द्वार के बाहर अनेक प्रजाजन सीढ़ियों पर बैठे और खड़े हैं। इन्हीं में विकर्ण भी है। विकर्ण की आयु [illegible] है। वह गौर वर्ण का सुन्दर युवक है। वेश-भूषा उसकी [illegible] के सदृश है। सारी [illegible] का वायु-मण्डल [illegible] है और सबकी दृष्टि [illegible] की ओर लगी हुई है। [illegible]

हैं और कौरव हर्षित। भीम के मुख पर दुःख के साथ क्रोध के भाव भी दृष्टिगोचर होते हैं।]

शकुनि—(पाँसों को हाथ में मलकर फेंकते हुए) मेरा सम्मान रहे, [illegible]!

[फेंके हुए दाँव को सब ध्यानपूर्वक देखते हैं।]

दुर्योधन—(हर्ष से) जीत जीत लिया, गांधार-नरेश ने यह दाँव भी जीत लिया।

प्रेक्षकों में से कुछ—(चिल्लाकर) साधु-साधु! साधु-साधु!

प्रेक्षकों में से कुछ—(चिल्लाकर) क्या कहना! क्या कहना!

एक प्रेक्षक—गांधार-नरेश के सामने सबका खेल उसी प्रकार अस्त हो जाता है जिस प्रकार सूर्य के सामने नक्षत्रों का प्रकाश।

कर्ण—(युधिष्ठिर से) कहिए, धर्मराज, राज-पाट गया। राजसूय यज्ञ की जिन भेंटों पर आपको इतना गर्व था, वे भी गयीं। अब और कुछ लगाइएगा?

युधिष्ठिर—क्यों नहीं? अभी मेरे पास बहुत कुछ लगाने को है।

एक प्रेक्षक—हाँ, हाँ, धर्मराज कच्चे खिलाड़ी थोड़े ही हैं।

दूसरा प्रेक्षक—इस देश में तो धर्मराज सा कोई खेलने वाला है ही नहीं।

दुःशासन—(युधिष्ठिर से) लगाइए, लगाइए, और जो लगाना है वह लगाइए।

युधिष्ठिर—मैं अपने और अपने भाइयों के सारे आभूषण दाँव पर लगाता हूँ।

एक प्रेक्षक—जीवन इसे कहते हैं।

दूसरा प्रेक्षक—जीवन है, धर्मराज में सच्चा फड़कता हुआ जीवन है।

युधिष्ठिर—यह पण रहा रहेगा, मैं जीता तो जो मैंने खोया है वह सब [illegible] और हारा तो ये आभूषण भी गये।

शकुनि—(पाँसों को हाथ में मलते हुए) हाँ हाँ, सो तो है ही। सो

तीसरा दृश्य

स्थान—हस्तिनापुर के राज प्रासाद का सभाकक्ष

समय—अपराह्न

[एक विशाल कक्ष है, जिसकी तीन ओर की भित्तियाँ चित्रकारी से विभूषित दिखायी देती हैं। भित्तियो में अनेक द्वार है, जिनकी चौखटें और कपाट चन्दन के है और हाथीदाँत से सुसज्जित। कक्ष की छत पाषाण के खुदावदार स्थूल स्तम्भो पर है और कक्ष की भूमि पर रग-बिरगा बिछावन बिछा है। बिछावन पर पीछे की भित्ति के अत्यन्त सन्निकट सुवर्ण का रत्न-जटित सिहासन है। सिहासन के उभय ओर सुवर्ण की रत्न-जटित गद्दी-तकियो से युक्त अनेक चौकियाँ रखी है। सिहासन पर धृतराष्ट्र और चौकियो पर भीष्म, द्रोण, कृप और विदुर बैठे है। धृतराष्ट्र पर छत्र-वाहिका छत्र लगाये है एव चामर तथा व्यजन वाहिकाएँ चामर और व्यजन डुला रही है। कक्ष के बीच में एक नीची सी सुवर्ण की चौकी पर चौपड बिछी है। इस चौकी के दाहिनी तथा बायी ओर सुवर्ण की अनेक रत्न-जटित गद्दी तकियो से युक्त चौकियाँ रखी है। दाहिनी ओर की चौकियो पर युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव बैठे है और बायीं ओर की चौकियो पर दुर्योधन, दुशासन, कर्ण, अश्वत्थामा और शकुनि। शकुनि की अवस्था लगभग ३५ वर्ष की है। वह गौर वर्ण का ऊँचा पूरा व्यक्ति है। लम्बे बाल है और ऊपर को चढी हुई मूँछें। वेश-भूषा अन्य कौरवो के सदृश ही है। इधर उधर अनेक प्रेक्षक चौकियो पर बैठे और खडे है। इन्हीं में विकर्ण भी है। विकर्ण की आयु १६ वर्ष के लगभग है। वह गौर वर्ण का सुन्दर युवक है। वेष-भूषा उसके अन्य भाइयो के सदृश है। सारी द्यूतशाला का वायु-मडल खेल के कारण अत्यन्त क्षुब्ध है और सबकी दृष्टि खेल की ओर लगी हुई है। पाडव दुर्गो जाते पडते

है और कौरव हर्षित। भीम के मुख पर दु.ख के साथ क्रोध के भाव भी दृष्टिगोचर होते है।]

शकुनि—(पाँसो को हाथ में मलकर फेंकते हुए) मेरा सम्मान रहे, [illegible]!

[फेंके हुए दाँव को सब ध्यानपूर्वक देखते है।]

दुर्योधन—(हर्ष से) जीत   जीत लिया, गाधार-नरेश ने यह दाव भी जीत लिया।

प्रेक्षको में से कुछ—(चिल्लाकर) साधु-साधु! साधु-साधु!

प्रेक्षको में से कुछ—(चिल्लाकर) क्या कहना! क्या कहना!

एक प्रेक्षक—गाधार-नरेश के सामने सबका खेल उसी प्रकार अस्त हो जाता है जिस प्रकार सूर्य के सामने नक्षत्रो का प्रकाश।

कर्ण—(युधिष्ठिर से) कहिए, धर्मराज, राज-पाट गया। राजसूय यज्ञ की जिन भेंटो पर आपको इतना गर्व था, वे भी गयी। अब और कुछ लगाएगा?

युधिष्ठिर—क्यो नही? अभी मेरे पास बहुत कुछ लगाने को है।

एक प्रेक्षक—हाँ, हाँ, धर्मराज कच्चे खिलाडी थोडे ही है।

दूसरा प्रेक्षक—[illegible] में तो धर्मराज सा कोई खेलने वाला है ही नही।

दु शासन—(युधिष्ठिर से) लगाइए, लगाइए, और जो लगाना है [illegible] लगाइए।

युधिष्ठिर—मैं अपने और अपने भाइयो के सारे आभूषण दाँव पर [illegible]।

एक प्रेक्षक—[illegible] करते है।

दूसरा प्रेक्षक—[illegible] धर्मराज में सच्चा दमकता हुआ जीवन है।

युधिष्ठिर—[illegible], मैं जीता तो जो मैंने खोया है वह सब [illegible] और हारा तो ये आभूषण भी गये।

शकुनि—(पाँसो को हाथ में मलते हुए) हाँ हाँ, सो तो है ही। सो

तो सारे खेल में रहेगा। (पाँसे फेंकते हुए) मेरा सम्मान रहे, द्यूतदेव!

[फेंके हुए दाँव को फिर सब ध्यान से देखते हैं।]

दुर्योधन—(हर्ष से) जीत गये, गान्धार-राज इस दाँव को भी जीत गये।

प्रेक्षकों में से एक—(एक साथ) साधु-साधु! साधु-साधु!

प्रेक्षकों में से कुछ—क्या कहना है! क्या कहना!

कर्ण—तो . तो अकिंचन हो गये धर्मराज, अब जाओ, समाप्त करो खेल को।

युधिष्ठिर—(उत्तेजना से) अकिंचन हो गया हूँ मैं! कैसा अकिंचन? खेल समाप्त नहीं हो सकता।

दुःशासन—तो अब क्या लगाइएगा?

युधिष्ठिर—(वैसी ही उत्तेजना से) मैं सहदेव को दाँव पर रखता हूँ।

[सभा में एक प्रकार से सन्नाटा सा छा जाता है, और भीम का मुख तिलमिला उठता है, पर वह कुछ बोलता नहीं। कुछ देर निस्तब्धता सी रहती है।]

युधिष्ठिर—(उसी प्रकार की उत्तेजना से) हाँ, हाँ, फेंको, फेंको—पाँसे, गान्धार-राज।

शकुनि—(पाँसों को हाथ में मलते हुए और दुर्योधन की ओर देखकर) ऐसा?

दुर्योधन—हाँ, हाँ, फेंको, फेंको दाँव। जीतने की आशा से ही तो सहदेव को दाँव पर रख रहे हैं धर्मराज।

शकुनि—(पाँसे फेंकते हुए) मेरा सम्मान रहे, द्यूतदेव!

[फेंके हुए दाँव को सब लोग ध्यानपूर्वक देखते हैं।]

दुर्योधन—जीत लिया इस दाँव को भी गान्धार-राज ने जीत लिया।

युधिष्ठिर—(और उत्तेजना से) मैं नकुल को दाँव पर रखता हूँ।

[कोई कुछ नहीं बोलता, पर सभा का वायुमंडल और गम्भीर हो जाता है, जो प्रेक्षकों की मुद्रा से जान पड़ता है। भीम का क्रोध और बढ़ जाता है।]

शकुनि—(पासों को हाथ में मलकर फेंकते हुए) मेरा सम्मान रहे, [illegible]!

[फेंके हुए दांव को सब लोग ध्यानपूर्वक देखते हैं।]

दुर्योधन—तो माद्री-पुत्रों से धर्मराज ने अच्छा छुटकारा पाया।

युधिष्ठिर—(और अधिक उत्तेजना से) ऐसा? तुम समझते हो, दुर्योधन, भीम और अर्जुन से मुझे नकुल और सहदेव कम प्रिय हैं?

कर्ण—तो लगाइए न अर्जुन को दांव पर।

युधिष्ठिर—हां, तो मैं अर्जुन को दांव पर लगाता हूं।

[सभा का वायुमंडल अब स्तब्ध हो जाता है। भीम का क्रोध बढ़ता ही जाता है। कर्ण और अर्जुन एक दूसरे की ओर इस तरह देखते हैं जैसे अपनी दृष्टि से एक दूसरे को भस्म कर देना चाहते हैं।]

शकुनि—(पांसों को हाथ में मलकर फेंकते हुए) मेरा सम्मान रहे, [illegible]!

[सब लोग ध्यानपूर्वक फेंके हुए दांव की ओर देखते हैं।]

दुर्योधन—अर्जुन भी गये, धर्मराज. भीम को दाव पर रखने का [illegible] नहीं हो सकता।

युधिष्ठिर—(और अधिक उत्तेजना से) क्यों, मैं भीम का भी अग्रज हूं। मैं भीम को भी दांव पर रखता हूं।

[भीम क्रोध से लाल हो जाता है, पर कुछ बोलता नहीं।]

शकुनि—(पासों को हाथ में मलकर फेंकते हुए) मेरा सम्मान रहे, [illegible]!

[सब लोग फेंके हुए दांव को देखते हैं। दुर्योधन हर्ष से उछल पड़ता है। भीम का मुख [illegible] ग्लानि से [illegible] जाता है। वह बैठ जाता है।]

कर्ण—भीम भी गये। अब और भी कुछ रह गया, धर्मराज ?

युधिष्ठिर—(और अधिक उत्तेजना से) हाँ, हाँ, क्यो नही मै जो शेष हूँ। मै भी अपने को दांव पर रखता हूँ।

[सभा में अत्यधिक स्तब्धता।]

अश्वत्थामा—(खडे होकर धृतराष्ट्र आदि की ओर देखकर) महाराज, महाराज, यह क्या यह क्या हो रहा है ?

युधिष्ठिर—(उसी प्रकार के उत्तेजित स्वर में) होता मै रहा हूँ या महाराज। मैने अपने को दांव पर लगा दिया और चढाये हुए दांव को लौटाने के लिए मै प्रस्तुत नही।

[धृतराष्ट्र आदि कोई कुछ नही बोलते।]

शकुनि—(पांसो को हाथो में मलकर फेंकते हुए) मेरा सम्मान रखे, द्यूतदेव !

[इस बार दांव को देखने का किसी प्रेक्षक को साहस नहीं होता। केवल युधिष्ठिर, दुर्योधन, दु शासन, शकुनि और कर्ण उसे देखते है।]

शकुनि—आप अपने को भी हार गये, धर्मराज, अब तो द्रौपदी ही शेष है।

युधिष्ठिर—(और भी उत्तेजित होकर) हाँ, अभी मेरे पास द्रौपदी है।

[सभा भवन "धिक्' "धिक्" शब्दो से गूंज उठता है। चारो पाण्डव उठकर खडे हो जाते है। भीम अत्यन्त क्रोध से अपनी गदा संभालता है। अश्वत्थामा चौपड की चौकी की ओर पीठ करके खडा हो जाता है। धृतराष्ट्र को छोडकर भीष्म, द्रोण, कृप और विदुर के मुख झुक जाते है। प्रेक्षकों में से अधिकाश के मुख से दीर्घ निश्वासें निकलने लगती है।]

युधिष्ठिर—(शकुनि से) हाँ, फेंको दांव, गान्धार-नरेश, मैने पाञ्चाली को दांव पर लगा दिया।

[फिर "धिक्, धिक्" शब्द होते है। शकुनि इस बार बिना कुछ कहे चुपचाप पांसे हाथो में मलकर फेंकता है। फेंके हुए दांव को इस

द्वार भी केवल युधिष्ठिर, दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण और शकुनि देखते हैं।]

दुर्योधन—(अट्टहास कर खड़े हो) तो पांचाली... पांचाली को भी हमने जीत लिया, धर्मराज, वह भी हमारी दासी हुई। (विदुर से) तात, इस नर्तकी दासी को सभा में उपस्थित करने के लिए आपसे ही प्रार्थना करता हूँ। आपके प्रयत्न से वह शीघ्र ही आ जाएगी।

[सभा की स्तब्धता और बढ़ जाती है। युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल और सहदेव के सिर दुर्योधन के भाषण से झुक जाते हैं, परन्तु भीम का सिर खड़ा उठ जाता है। वह दाँत पीसकर कुछ कहना ही चाहता है, परन्तु इसी बीच में विदुर बोलते हैं—]

विदुर—जो तुम्हें नहीं कहना चाहिए वह तुम कह रहे हो, सुयोधन, तथा जो तुम्हें नहीं करना चाहिए वह तुम कर रहे हो। तुम्हारे पाप की गति उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है। ये पांडव सिंहों एवं भुजंगों के सदृश हैं। अभी भी तुमने इन्हें यथेष्ट क्रोधित कर दिया है, पर अब और आगे न बढ़ो। और आगे बढ़कर इन्हें क्रोधित करना मूर्ख के सदृश मृत्यु को बुलाना होगा। जो कुछ हो रहा है, उसका फल कदाचित् यह होगा कि सारे कुरुकुल का नाश हो जाएगा।

दुर्योधन—(अट्टहास कर) दासीपुत्र की दास पांडवों एवं दासी द्रौपदी से सहानुभूति होना स्वाभाविक ही है। इन दास पांडवों से दास को ही सहानुभूति हो सकती है, हम स्वामियों को नहीं। युधिष्ठिर स्वयं को अपने भाइयों को और पांचाली को हार चुके हैं। वे कह दें कि यह सत्य नहीं है।

[दुर्योधन युधिष्ठिर के उत्तर के लिए चुप होकर युधिष्ठिर की ओर देखता है। सारे प्रेक्षकों की दृष्टि युधिष्ठिर की ओर घूम जाती है। भीम दाँतों से होंठ को चबाते हुए युधिष्ठिर की ओर देखता है। पर युधिष्ठिर कुछ नहीं कहते। कुछ देर निस्तब्धता।]

दुर्योधन—(फिर अट्टहास कर प्रतिहारी से) प्रतिहारी, पांचाली

इस समय हस्तिनापुर के प्रासाद मे ही है। तुम जाओ, सभा मे जो हुआ है, सारा वृत्त उसे कह, उसे सभा मे आने के लिए कहो।

[प्रतिहारी का अभिवादन कर प्रस्थान, पर उसका मुख उतर गया है और नेत्र भर आये हैं। कुछ देर निस्तब्धता। भीम सभा को चारो ओर देख, न बोलने का पूर्ण प्रयत्न करता है। वह बार बार अपने अधर को दाँतो से चबाता है, पर अन्त में उससे बोले बिना नही रहा जाता।]

भीम—(अत्यन्त उग्र स्वर में युधिष्ठिर से) महाराज, हर वस्तु की सीमा होती है। सहन-शक्ति भी असीम नही, अत अब मुझ से नहीं रहा जाता। आप ग्राम, पुर, जन-पद और सारा राज-पाट हार गये, सारी धन-सम्पत्ति हार गये, पर मैंने यह सब सह लिया। आपने हम भाइयो को, अपने आपको दॉव पर लगाया, उस समय भी मैंने कुछ नही कहा। किन्तु . . .किन्तु, महाराज, द्रौपदी को दॉव पर रखकर हार जाना, और (कौरवों की ओर सकेत कर) इन दुष्ट नीचो की छलपूर्वक यह सारी जीत, मैं न सह सकूँगा, . . .मुझ से न सही जावेगी। महाराज, जिन हाथो से आपने पाचाली को दाव पर लगाया है, वे हाथ मै जला डालूँगा। (सहदेव से) सहदेव, लाओ, अग्नि तो लाओ।

अर्जुन—(घबडाकर भीम से) तात, यह . . . यह आप क्या कर रहे है? आपको आज क्या हो गया है? आर्य, आपने तो आज पर्यन्त कभी ऐसी बात नही कही। ये कौरव नृशंस हैं, इसमे सन्देह नही। उन्होंने छल से हमारा गौरव नष्ट किया है, यह भी सत्य है। पर आवेश मे भर कर तो हम अपना सच्चा धर्म छोड देवेंगे, अधर्म करेंगे। यदि हमने यह किया तो इन शत्रुओ की इच्छा पूर्ण हो जावेगी। हमारे ज्येष्ठ भ्राता धर्मराज हैं। अपनी सतत धर्मनिष्ठा के कारण, उन्होने धर्मराज का पद पाया है। उन्हें खेलने बुलाया गया। प्रचलित क्षात्रधर्म के अनुसार उन्होंने उस निमन्त्रण को स्वीकार कर द्यूत खेला। खेलने के पश्चात् दाव पर क्या रखा जाता है, तथा क्या हारा जीता, यह तो प्रधानतया जिस समय खेल होता है उस

समय के [illegible] पर निर्भर रहता है। भगवान् ने हमें बड़ी-बड़ी आपत्तियों से बचाया। आगे भी वे ही बचावेंगे। धैर्य रखकर अपने धर्म पर स्थिर रहना हमारा कर्तव्य है।

[भीष्म का सिर झुक जाता है। सभा में फिर स्तब्धता छा जाती है। जो प्रतिहारी द्रौपदी को लेने गया था उसका प्रवेश।]

दुर्योधन—(प्रतिहारी को देखकर) द्रौपदी आ रही है ?

प्रतिहारी—नहीं, श्रीमान्।

दुर्योधन—(क्रोध से) नहीं, नहीं क्यों ?

प्रतिहारी—उन्होंने आना अस्वीकृत कर दिया, श्रीमान्।

दुर्योधन—(और भी क्रोध से) मेरी दासी ने मेरी आज्ञा उल्लंघन कर दी। (गरजकर दुःशासन से) दुःशासन, तुम जाओ और तुम दासी को यहाँ उपस्थित करो। जो न आये तो बलपूर्वक उसे खींच लाओ।

[दुःशासन का प्रस्थान। सभा में फिर निस्तब्धता।]

विकर्ण—(एकाएक धृतराष्ट्र से) तात, यह क्या … क्या हो रहा है यह ? (भीष्म से) पितामह, आप भी चुप हैं ! (द्रोण और कृप से)

[दुःशासन द्रौपदी के बालों को पकडकर उसे खींचते हुए लाता है। द्रौपदी रोती हुई आती है। सभा फिर "धिक्, धिक्" शब्दो से गूंज उठती है। पाँचो पाडव द्रौपदी को देख तिलमला उठते हैं। भीम अत्यन्त क्रुद्ध हो गदा को सँभालता है।]

द्रौपदी—(रोते हुए) हे हे, कुरुवश का इतना पतन! कुरुवंश की वधू का सारे कुरुवश के गुरुजनो के सम्मुख यह अपमान!

दुर्योधन—किन्तु तुम कुरुवश की रह कहाँ गयी हो, द्रौपदी? तुम तो मेरी दासी हो। यदि सम्मान ही चाहती होती तो (अपनी जाँघ उघाडकर) यह स्थान तुम्हे बैठने को दिया जा सकता है।

कर्ण—हाँ, ठीक कह रहे हो, कुरुराज, ससार मे तीन वस्तुए अधम हैं—दास, पुत्र तथा परतन्त्र नारी। पाचाली, तुम हो अब अधम दास की पत्नी। तुम्हारा सारा धन और पति चले गये हैं। अत यदि सम्मान की ही भूखी हो तो सुयोधन के परिवार मे प्रवेश करो। अब तुम्हे दूसरा पति चुनना चाहिए। परन्तु ऐसा पति चुनना, जो द्यूत खेलकर फिर तुम्हे दाँव पर न रख दे, एव दाव पर रखकर हार कर फिर तुम्हे दासी न बना दे।

द्रौपदी—(गम्भीर होकर) न जाने यह सब असगत यहाँ क्या बका जा रहा है! मैं सभासदो से केवल एक प्रश्न पूछना चाहती हूँ।

[सभा में सन्नाटा छा जाता है।]

द्रौपदी—क्या यह सत्य है कि मुझे दाँव पर रखने के पूर्व धर्मराज स्वय अपने को हार चुके थे?

विकर्ण—सत्य है।

कुछ प्रेक्षक—सर्वथा सत्य है, सर्वथा सत्य है।

द्रौपदी—तो उन्हें मुझे दाव पर रखने का अधिकार ही नहीं था। फिर पत्नी पति की सम्पत्ति नहीं कि वह उसका जो चाहे सो करे। पति-पत्नी का बराबरी का सम्बन्ध है। मैं दासी नहीं हूँ, कदापि नहीं। मैं कुरुवश की वधू हूँ, पाचाल-नरेश की पुत्री। धर्म के नाम पर और .

कौन मुझे दासी कह सकता है ? किसका साहस है कि वह मुझ से दासी का सा व्यवहार करे ?

दुर्योधन—तुम्हारे पति स्वीकार करते हैं कि तुम दासी हो। और फिर भी जान लो, यदि युधिष्ठिर यह कह दें कि वे तुम्हें नहीं हारे हैं, तथा उन्हें तुम्हें हारने का अधिकार न था, यदि उनके चारों अनुजों में से कोई भी कह दे कि उनके अग्रज को तुम्हें हारने का अधिकार न था, तो मैं तुम्हें दासत्व से मुक्त करने को प्रस्तुत हूँ।

[द्रौपदी अत्यन्त कातर दृष्टि से अपने पाँचों पतियों की ओर देखती है। चार तो अपने मस्तक ही नहीं उठाते। भीम उसकी ओर देखता है पर फिर अपने भाइयों, विशेष अर्जुन की ओर देख, अपने अधर को दाँतों से दबाते हुए सिर झुका लेता है। द्रौपदी साहस से भीष्म के निकट जाती है।]

द्रौपदी—जब आप यह कहते हैं, पितामह, कि गान्धार-नरेश द्यूत में पटु हैं और धर्मराज नहीं, तब तो विषय और भी स्पष्ट हो जाता है। (कर्ण की ओर देखकर) वसुषेण सदा हमारे विरुद्ध षडयन्त्र रचा करते हैं। यह सभी जानते हैं कि उन्होंने इस बार गान्धारेश को गान्धार से बुलवाया। एक नये षडयन्त्र की रचना की गयी। अशुद्ध भावना एवं कपट करने की इच्छा से ही अनजान धर्मराज द्यूत खेलने बुलाये गये तथा उस षडयन्त्र में फँसाये गये।

[भीष्म कुछ नहीं बोलते। कुछ देर निस्तब्धता।]

द्रौपदी—(सभा को चारों ओर देख, सभासदों को सम्बोधित कर) पितामह नहीं बोलते। कुरुवंश के कोई गुरुजन नहीं बोलते। मेरे पाँचों पति नहीं बोलते। तो मैं आप सभासदों से पूछती हूँ। मेरे प्रश्न का आप ही उत्तर दीजिए। यहाँ अनेक राजा तथा उच्चाशीय [illegible] क्षत्रिय हैं जिनकी माताएँ होंगी, भगिनियाँ होंगी, पत्नियाँ होंगी, पुत्रवधुएँ होंगी। वे [illegible] वे ही मेरे प्रश्नों का उत्तर देने की कृपा करें। कुछ तो बोलें।

[कोई कुछ नहीं बोलता। फिर कुछ देर निस्तब्धता।]

द्रौपदी—(चारों ओर कातर दृष्टि से देखने के पश्चात् गम्भीर हो, गरज कर) तो [illegible] तो यह निस्तब्धता बड़े-बड़ों की निस्सारता, [illegible] की पुत्री और कायरता की पौत्री दिखती है। स्वार्थ कायरता को जन्म देता है और कायरता वाणी को मूक कर देती है। [illegible] समय भी कोई कुछ नहीं बोलता, तो मैं ही बोलती हूँ। मैं नारी [illegible] नहीं मानती। अपने बल [illegible] पूर्ण बल से बोलती हूँ। [illegible] अनुसार भी मैं दासी नहीं हुई हूँ। मैं स्वतन्त्र हूँ, [illegible] और मेरे साथ दासी का व्यवहार धर्म के अनुसार [illegible]।

विकर्ण—(आगे बढ़कर) हाँ, मैं [illegible] मानता हूँ, [illegible] दासी नहीं हुई हैं, आप

घोषणाएँ मिथ्या न होंगी, और ... और यदि मिथ्या हो जायें तो मुझे सद्गति न मिले।

[सारी सभा इस गर्जन से काँप उठती है। द्रौपदी का वस्त्र बराबर बढ़ता ही जाता है। अश्वत्थामा धृतराष्ट्र के पास जाता है।]

अश्वत्थामा—(धृतराष्ट्र से) महाराज, महाराज, रोकिए इस अनर्थ को। अभी ... अभी भी कुरुवंश कदाचित् बच सकता है।

धृतराष्ट्र—(जो भीम की इस गर्जना से थर थर काँप रहे थे, काँपते हुए स्वर में) समाप्त ... समाप्त करो यह सारा खेल तथा कौतुक। याज्ञसेनी! याज्ञसेनी!

[द्रौपदी झपट कर धृतराष्ट्र के सन्मुख जाती है।]

द्रौपदी—आज्ञा, पितृव्य।

धृतराष्ट्र—(हाथ बढ़ाकर टटोलते हुए) आ ... आ ... मेरे निकट आ।

[द्रौपदी धृतराष्ट्र के निकट जाती है। धृतराष्ट्र उसके मस्तक पर अपना हाथ रखते हैं!]

धृतराष्ट्र—(द्रौपदी के मस्तक पर अपना हाथ फेरते हुए) माँग, तू जो चाहे सो मुझ से माँग सकती है।

द्रौपदी—ऐसा? तो मुझे वर दीजिए कि मेरे पाँचों पति दासता से मुक्त हो पुनः अपने राज्य और सम्पत्ति के अधिकारी हो जायँ।

धृतराष्ट्र—तथास्तु। ऐसा ही हो, वत्से।

[सभाभवन में जयजयकार होता है, परन्तु दुर्योधन दुःशासन और शकुनि खिन्नमना उठते हैं।]

कर्ण—(अट्टहास कर) तो द्रौपदी, तुम [illegible] बनीं।

लघु यवनिका

चौथा दृश्य

स्थान—इन्द्रप्रस्थ मे पाडवो के भवन में कुन्ती का कक्ष

समय—प्रातःकाल

[कक्ष प्राय वैसा ही है, जैसा दूसरे दृश्य का था । रंग और चित्रकारी का अन्तर है । कुन्ती घूमती हुई गा रही है ।]

गान

बीत यौवन की बात !

[illegible] [illegible] उठ उठ, चमक, चमक, [illegible] में करती आह्वान ।
इस वन नाना कुंज पुंजों पर उस तटिनी के तीर ।
कुसुम घाटियों में अगणित छोटे तीखे तीर ।
मैं [illegible] में [illegible] गई जब डोली सुरभित डाल ।

उसका शरीर बढ़ा है, हाँ, वैसे-वैसे वे कुंडल और कवच बढ़े हैं। (कुछ रुककर एक चौकी पर बैठ) जन्म के दिन से रंगशाला के उस दिन तक कभी भी उसे देखा तक न था। (सामने की ओर शून्य दृष्टि से देखते हुए) मन अनेक बार जन्म के उस दिन की ओर दौड़ लगा आता था, पर ... पर जैसे-जैसे ... जैसे-जैसे समय बीतता जाता, दौड़ लम्बी होती जाती, वैसे-वैसे ... वैसे-वैसे इस दौड़ की आवृत्तियाँ घटती ... हाँ, घटती जाती। (कुछ रुककर फिर खड़े होकर घूमते हुए) फिर भी कई बार हृदय में एक हूक सी उठती। अनेक बार अन्तःकरण में एक शूल सा उठता। परन्तु ... परन्तु ... यह सोचकर कि वह तो जन्म-मरण दोनों साथ ही साथ हो गये, उस पीड़ा का एक विचित्र प्रकार से परिमार्जन हो जाता। (खड़े होकर बाहर की ओर देखते हुए) और ... और अनेक बार शान्ति मिल जाती। (फिर घूमते हुए) उस शान्ति ... शान्ति का कदाचित् दूसरा ही कारण था। समाज में मेरी करनी का भंडाफोड़ न हुआ था न, बच गयी, हाँ, धुली-धुलाई बच गयी थी न मैं। (फिर चौकी पर बैठकर) पर कैसी करनी ? ... सन्तानोत्पत्ति बुरी करनी ... एवं सन्तानोत्पत्ति के पश्चात् माता का कर्म बुरा कर्म ? (फिर खड़े होकर घूमते हुए) ओह ! मैंने माता के किस कर्म ... किस कर्तव्य का पालन किया ? (खड़े हो) कर्तव्य. . कर्तव्य दूर रहा, सामाजिक भय ने, स्वाभाविक स्नेह तक को सुला दिया। जो ... जो मेरी सजीव गोद की वस्तु थी, वह ... वह निर्जीव मंजूषा में ! ... जिसे मेरे दुग्ध की धारा प्राप्त होनी चाहिए थी जिलाने के लिए, उसे प्राप्त हुई नदी ... हाँ, नदी की धारा मारने के लिए। (फिर घूमते हुए) ओह ! जन्म देने वाली माता हो गयी मारने वाली डाकिनी हो गयी। ... और कारण ?—सामाजिक भय। (फिर चौकी पर बैठकर) युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन के जन्म में और [illegible] जन्म में यही .. यही तो अन्तर है न कि ये तीनों विवाह के पश्चात् हुए और वह विवाह के पूर्व। ... विवाह के पश्चात् की सन्तानोत्पत्ति में

न होकर किसी अन्य से भी हो तो भी समाज को ग्राह्य है। (कुछ रुककर) हाँ … और जब विवाह-संस्था ही न थी तब ? … प्राचीन सामाजिक समाज में विवाह ही न था, … इसका निर्माण हुआ है अधिक सुख के लिए। … पर … पर क्या इससे अधिक सुख हुआ ?

[पांडवों का द्रौपदी के साथ प्रवेश। सब आभूषणों से रहित वल्कल वस्त्र धारण किये हुए आते हैं। उनकी यह वेश-भूषा देखकर कुन्ती खड़ी ही स्तब्ध सी रह जाती है। वे कुन्ती का अभिवादन करते हैं। कुन्ती की स्तब्धता के कारण न कुन्ती के मुख से आशीर्वाद के वचन निकलते न हाथ ही उठता। कुछ देर तक विचित्र प्रकार की निस्तब्धता रहती है।]

कुन्ती—(बड़ी कठिनाई से एक एक शब्द रुकरुककर बोलते हुए) हैं … हैं … यह … यह … क्या ? … ऐसा … ऐसा … हुए ?

दूसरा अंक

पहिला दृश्य

स्थान—हस्तिनापुर मे कर्ण के भवन का उद्यान

समय—सन्ध्या

[एक ओर भवन का कुछ भाग दिखायी देता है। शेष स्थल पर सुन्दर उद्यान है। क्यारियो में विविध प्रकार के पुष्प खिले हैं। यत्र-तत्र श्वेत पत्थर की चौकियाँ बैठने के लिए रखी है। कर्ण इधर-उधर घूम रहा है।]

कर्ण—कितनी ... कितनी तेजस्विता है द्रौपदी में ! ... जितना सौन्दर्य है उतना ... उतना ही तेज और उतनी .. उतनी ही बुद्धिमत्ता ! (चौकी पर बैठकर) द्यूत के दिन के भाषण भुलाये नहीं भूलते ... वरन् .. वरन् कानों मे वे सदा गूँजते रहते है। जब .. जब उसकी बातों का भीष्म तक उत्तर न दे सके, ..सभा में कोई न बोला ... तब किस .. किस साहस से उसने कहा था—"कोई कुछ नहीं बोलता तो मैं ही बोलती हूँ। मैं नारी को अबला नहीं मानती। अपने बल, पूर्ण बल से बोलती हूँ। प्रचलित धर्म के अनुसार भी मै दासी नहीं हुई, मैं स्वतन्त्र हूँ, पूर्ण रूप से स्वतन्त्र।" (फिर खड़े हो इधर-उधर घूमते हुए) यदि इस भाषण का किसी भाषण से मिलान हो सकता है तो ... तो वह मेरे रंगशाला के भाषण से, जब ... जब मेरे मुख से आप से आप, हाँ, आप से आप निकल गया था—"मेरा पौरुष ही मेरा [illegible] है। मै अपना वंश बनाऊँगा, मैं अपना वर्ण बनाऊँगा।" (फिर बैठकर) और ... और ऐसी तेज पूर्ण ... ऐसी बुद्धिमती नारी [illegible] योग्य हो सकता था, तो वह मैं, [illegible]

दुर्योधन—सहानुभूति एक ऐसी वस्तु है, जो परिवर्तित होती रहती है; कभी वह मेरे प्रति रहती है, तो कभी पाडवो के प्रति। उस दिन द्यूत मे पाडवो के प्रति हो गयी थी। आज भी पाडवो के प्रति है।

अश्वत्थामा—द्यूत मे उन्हे मर्यादातीत कष्ट दिया गया था, आज वे वन मे कष्ट पा रहे है।

दुःशासन—वन मे कष्ट पा रहे है! क्या कष्ट है वन मे उन्हे? जो सवाद प्राप्त होते है, उनसे तो जान पडता है कि वन मे वे बडे सुख से है।

कर्ण—इतना ही नही, परलोक और इहलोक दोनो ही मे उनका हित हो इसके लिए न जाने कितने विचार किये जा रहे है। कभी सुन पडता है ऋषि मुनियो से विचार विनिमय हो रहा है। कभी सुन पडता है कि जब हममे युद्ध होगा तब उसमे सफलता के लिए क्या-क्या किया जाय, इस पर परामर्श हो रहा है। शकर से पाशुपत अस्त्र तक प्राप्त किया गया है।

अश्वत्थामा—परन्तु उनका वन मे [illegible] क्या [illegible] का कारण नही है?

दुर्योधन—वन म निवास कष्ट का कारण! वन [illegible] प्राकृतिक वायुमडल मे निवास कष्ट का कारण तो हो नही सकता। [illegible] प्रकार के पर्वतो, वृक्षो और लताओ के दर्शन तथा उनके बीच भ्रमण, [illegible], नदियो, झरनो और सरोवरो के समीप निवास, कन्द, मूल, फल [illegible] नियो का निरोग भोजन तथा बहते हुए निर्मल [illegible] पान, [illegible] आखेट। फिर पत्नी सहित [illegible] है। [illegible] न है और न किसी प्रबन्ध का उत्तरदायित्व।

दुःशासन—अरे, राम ने सीता के हरण [illegible] वन म [illegible] जीवन भर में कभी नहीं। जीवन के [illegible] स्मृति की अटूट निधि रही। जब [illegible]

थी, परन्तु जटायें और दाढ़ी मूँछें बढ गयी हैं। कुटी के भीतर से द्रौपदी के गान की ध्वनि भी आ रही है।]

गान

री उमड़ कर,
री घुमड़ कर,
दो नयन
कहते कहानी रात की।
एक मधुकर
शूलपथ पर
सो गया
करता प्रतीक्षा प्रात की।
री कहानी रात की।
आज जीवनतम-भरी है यामिनी,
मेघ भी है औ' दमकती दामिनी।
केश मेरे आज तक कल के खुले—
आह! मैं [illegible] में कामिनी।
पाप हँसता,
धर्म तपता
री गहन
वन एक कुटिया पात की।
री कहानी रात की।

युधिष्ठिर—(गान पूर्ण होने पर) यह भी एक जीवन है, [illegible]?

भीम—(गदा मलते-मलते) क्यों नहीं, प्रत्येक [illegible] का [illegible] और बाहर निकलना ही जीवन है।

युधिष्ठिर—किन्तु, भीम, जीव तो पशु-पक्षी, कृमि-कीट सभी के भीतर जाता और बाहर निकलता है।

भीम—(गदा मलना बन्द कर, उसे अच्छी तरह सम्हाल कर रखते हुए) तो आप कहते हैं, महाराज, हम पशु-पक्षी, कीट-कृमि की अपेक्षा कहीं कुछ अधिक उन्नत नहीं हैं?

युधिष्ठिर—(पर्वतमाला की वृक्षावली की ओर संकेत कर) भीम,

दामिनी की चमक एवं गरज, कभी-कभी इन्द्र-धनुष का निकलना, मुझे उस सेना की कल्पना कराता है, जो इस वन तथा अज्ञातवास के पश्चात् हम एकत्रित कर कौरवों का नाश करेंगे। वह सेना इस मेघमाला से कहीं बड़ी और भीषण होगी, उसके शस्त्रों की चमक एवं वाद्यों तथा जयघोषों की गरज ऐसी क्षणिक न होगी, जैसी दामिनी की चमक एवं गरज होती है, और हमारी सेना के ध्वज उस सेना के एक नहीं अनगणित इन्द्रधनुष होंगे।

नकुल—(दीर्घ निश्वास छोड़कर) परन्तु, पार्थ, वह समय आएगा भी?

अर्जुन—मैं निराश नहीं, निराशा मेरे पास फटकती भी नहीं, मैं तो बड़ा आशावादी हूँ। तेरह वर्ष ही हमें बिताना है, अनेक बीत भी गये हैं। जीवन में तेरह वर्ष कोई बड़ा समय है, विशेष कर हमारी अवस्था वालों के लिए?

सहदेव—परन्तु एक वर्ष का अज्ञातवास हमारे लिए क्या कभी सम्भव हो सकेगा?

नकुल—यदि एक वर्ष के भीतर हम प्रकट हो गये तो फिर तेरह वर्ष की वही आवृत्ति!

अर्जुन—नहीं, नहीं, वह भी ... वह भी हो सकेगा। समय समय पर हमें इस वनवास में कितनी सहायता हुई है, वैसे हमारे अज्ञातवास का भी प्रबन्ध कर उसे सफल किया जाएगा।

भीम—और ... और यदि एक वर्ष [illegible] न हो सके तो ... तो भी मैं तेरह वर्ष की इस [illegible]। यह अभी से कहे देता हूँ। मैं यदि धर्मराज की [illegible] यह सब भोग रहा हूँ, तो मेरी प्रतिज्ञाएँ और [illegible] पूर्ण करनी है। दुःशासन का वक्षःस्थल चीर उसका रक्त पान, दुर्योधन की जंघा-भंग

[द्रौपदी का प्रवेश]

[एक ब्राह्मण का प्रवेश। युधिष्ठिर उठकर उसका स्वागत करते हैं, शेष जन भी अभिवादन। वह आशीर्वाद देकर कुशासन पर बैठता है।]

ब्राह्मण—महाराज, एक नवीन संवाद देने आया हूँ।

युधिष्ठिर—कहिए, आर्य।

ब्राह्मण—हस्तिनापुर से दुर्योधन-नरेश इस वन में अपनी गोशाला का निरीक्षण करने पधारे हैं। आपकी भेंट के लिए आने वाले थे, परन्तु बीच चित्रसेन गन्धर्व से युद्ध ठन गया। वे युद्ध में हार गये हैं।

युधिष्ठिर—(उत्तेजना से) तब....तब तो हमें युद्ध में सहायता देना चाहिए।

भीम—(और भी उत्तेजना से) हाँ, हाँ, हमें चित्रसेन की सहायता ...अवश्यमेव सहायता करनी चाहिए।

ब्राह्मण—किन्तु उसकी आवश्यकता नहीं, चित्रसेन की जीत में कोई सन्देह नहीं है।

युधिष्ठिर—चित्रसेन की नहीं, हमें सहायता करना चाहिए कौरवों का।

[सब आश्चर्य से स्तम्भित रह जाते हैं। भीम के मुख से सहसा ग्लानि भरे स्वर में निकल जाता है—"महाराज, महाराज!"]

युधिष्ठिर—हाँ, हाँ, मैं कहता हूँ, अपने समस्त बल, [illegible] के साथ कहता हूँ कि हम सब को अविलम्ब कौरवों की सहायता करना चाहिए। (जब कोई कुछ नहीं बोलता तो कुछ ठहरकर) [illegible] आपस का झगड़ा है—भाई-भाई का झगड़ा है—दूसरे के लिए हम सब [illegible] हैं, एक हैं—

'परस्परविरोधे तु वयं पञ्च ते शतम्।
अन्यैः सह विरोधे तु वयं पञ्चोत्तरं शतम्॥'

(जब फिर कोई कुछ नहीं बोलता) अच्छा जाओ, [illegible] सहायता करने नहीं जाना चाहते, तो [illegible] जाता हूँ। (झोंपड़े में जाने का उपक्रम होता है।)

छडियो को लेकर चल रहे हैं। शिविका के पीछे छत्र-वाहक हाथीदांत की डाँडी का श्वेत छत्र कर्ण पर लगाये हैं, जो मोतियो की झालर से युक्त है। दो चाँवर-वाहक स्वर्ण की डडियो के सुरागाय की पूंछ के श्वेत चामर कर्ण पर डुला रहे हैं। शिविकावाहकों के पीछे सेना का कुछ भाग दिखायी देता है। सभी सैनिक शिरस्त्राण एव कवच पहिने हैं तथा आयुधो से सुसज्जित है। दुर्योधन कर्ण के स्वागत के लिए अपने साथ के समुदाय के सग आगे बढता है। शिविका धरती पर रखी जाती है। कर्ण शिविका पर से उतरता है। दुर्योधन और कर्ण एक दूसरे का आलिंगन करते हैं। शेष व्यक्ति झुक-झुक कर कर्ण का अभिवादन करते हैं। वह सबका समुचित उत्तर देता है। जयजयकार की उच्च ध्वनि लगातार होती रहती है। स्त्रियो का झुड आगे बढ़कर कर्ण की आरती कर गाता है।]

गान

समूह—जगमग जगमग आरती।
कुछ स्त्रियाँ—यश गाती है जिसकी भारत गर्वित भारती।
समूह—जगमग जगमग आरती।
एक स्त्री—पधारो, स्वागत है, महराज।
दूसरी—जिसके सम्मुख झुके पराजित अगणित योद्धा आज।
पहिली स्त्री—पधारो, स्वागत है, महराज।
समूह—जगमग जगमग आरती।
एक स्त्री—पधारो, स्वागत है, रणधीर।
दूसरी स्त्री—दिग्विजयी होकर आये हैं, जिसके तीखे तीर।
पहिली स्त्री—पधारो, स्वागत है, रणधीर।
समूह—जगमग जगमग आरती।
एक स्त्री—पधारो, स्वागत शत शत बार।
दूसरी स्त्री—घर-घर पावन कलश प्रज्वलित, घर-घर बन्दनवार।
समूह—जगमग जगमग आरती।

[आरती और गान पूर्ण होने पर कर्ण एव दुर्योधन शिविका पर
ते है। शेष व्यक्ति शिविका के पीछे-पीछे पैदल चलते है और जुलूस
र-द्वार में प्रवेश करता है।]

पट परिवर्तन

[राज-मार्ग के बीच में जुलूस जाता हुआ दिखायी पड़ता है। जयजय-
र की ध्वनि हो रही है। अट्टालिकाओ से पुष्प-वर्षा। बीच-बीच में
गरिक कर्ण को नाना प्रकार की भेंटें देते है।][1]

पट परिवर्तन

[हस्तिनापुर के सभा-कक्ष में धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर
दि उपस्थित है। सभा-कक्ष भी पताकाओ, वन्दनवारो, कदली-वृक्षो
व मगल-कलशो आदि से सुशोभित है। कर्ण, दुर्योधन, दुःशासन, अश्व-
ामा विकर्ण तथा अनेक नागरिको का प्रवेश। जयजयकार। कर्ण
ागे बढकर धृतराष्ट्र के चरणो में अपना सिर रख अभिवादन करता है।]

दुर्योधन—तात, यह हमारे वसुषेण दिग्विजय कर आपके चरणो में
णाम कर रहे है। तात, हमे जो कोई भी न दे सका वह अकेले वसुषेण
दिया है।

धृतराष्ट्र—(उठकर कर्ण को खींच हृदय से लगाते हुए) तुम आज
मेरे पुत्र हुए, वसुषेण।

कर्ण—अनुग्रह, तात।

[पुन जयजयकार।]

लघु यवनिका

---

[1] नोट—इस दृश्य के आरम्भ से यहा तक का दृश्य कदाचित् सिनेमा
से ही दिखाया जा सकता है।

दूसरा दृश्य

स्थान—हस्तिनापुर के राजप्रासाद मे कुन्ती का कक्ष
समय—प्रात काल

[कुन्ती घूमती हुई गा रही है ।]

गान

आली, स्वागत के गान री !
पर अन्त मे उपहास करे, रूठी मेरी मुसकान री ।
कलियाँ यश-सौरभ फैलाती,
खग-बालाएँ नभ मे गाती,
मलयानिल स्वर भर गर्वित है, विजयी है मेरे प्राण री ।
आली, स्वागत के गान री !
तुम कौन चले आते मन्थर,
प्राची से फैला अपने कर,
सम्मान-विजेता को देने दलने मेरा अभिमान री ।
आली, स्वागत के गान री !
अपने को अपना कह न सकी,
रोई मैं पर हा ! वह न सकी,
बोया जिसको मैं रो न सकी, सूना मेरा उद्यान री ।
आली, स्वागत के गान री !

कुन्ती—(गान पूर्ण होने पर) कुरुदेश म आज पर्यन्त [illegible] किसका ऐसा स्वागत हुआ, और इतना [illegible]? [illegible] किसने इसके पूर्व इतना बड़ा कार्य किया था ? युधिष्ठिर के [illegible]जसूय यज्ञ के समय उसके चार अनुजो का भी स्वागत हुआ था । [illegible]न्तु किन्तु उन चार ने अलग-अलग हो, अलग-अलग चार दिशाएं

जीती थी। अत स्वागत बट सा गया था। जो जो कार्य उन चार ने किया वह वह अकेले वसुषेण ने। दो को जना, दो को पाला, अत उन चारो की भी माता मै हूँ और वसुषेण की भी माता मै।

उस समय उस समय भी मुझे कितना कितना सुख मिला था तथा तथा इस समय भी कितना! (कुछ रुककर) पर पर अभागिनी माता हूँ मै? जिन्होने चार दिशाएँ जीती थी वे चार, जिसने राजसूय यज्ञ किया था वह, पाचो, कहाँ अज्ञातवास मे वास कर रहे है, मै नही जानती, वसुषेण को यह ज्ञात नही कि कौन उसकी सच्ची जननी है! (फिर रुककर) सुना, हाँ, सुना दिग्विजय के पश्चात् वसुषेण ने धृतराष्ट्र के चरणो मे सिर झुकाया तब धृतराष्ट्र बोले, "आज से तुम मेरे पुत्र हुए"। (फिर कुछ रुककर) किसी एक युवक से दो युवतियाँ प्रेम करती हो, और वह युवक उनमे से किसी एक को चाहता हो, तो जैसी ईर्ष्या दूसरी के हृदय मे होती है वैसी वैसी माता होते हुए मेरे मन मे हो रही है।.. तथा तथा इस ईर्ष्या के साथ पीडा पीडा भी कितनी है?

जिसके राज्य मे मेरे पॉच पुत्र वन एव अज्ञातवास का दु ख भोग रहे हो, मेरा छठवाँ पुत्र उसी उसी को अपना पिता बना रहा है।

उसके उसके पुत्रो के लिए विश्व-विजय कर रहा है। . और और भी न जाने क्या-क्या? (फिर रुककर) अरे, यदि मैने समाज के डर से उसे उस मजूषा मे बन्दकर न बहा दिया होता तो . तो वह दूसरे के लिए यह यह सब करता? शत्रुओ के लिए?

वह विश्व-विजय करता अपने लिए। और उस समय. .. उस समय उसका सबसे पहिले स्वागत करती मै। (फिर कुछ रुककर) और मेरे ही साथ मेरे पाँचो पुत्र भी। (फिर कुछ रुककर) और.. . और अभी भी न जाने क्या क्या होगा? या या तो युद्ध होगा और युद्ध हुआ तो पाँच पुत्र एक ओर से और छठवाँ दूसरी ओर से लडेंगे, या पाँच के वन एव अज्ञातवास की पुनरावृत्ति होगी और छठवाँ

तो खोया हुआ है ही।   कौन मुझ सी अभागिनी माता होगी?   .
किस माँ का ऐसा असीम दुख होगा? (कुछ रुककर) पर यदि अभी
अभी भी सच्चा रहस्य प्रकट कर दूँ?.. वसुषेण को यदि ज्ञात
हो जाये कि वह मेरा पुत्र है, तथा पाडव उसके अनुज, पाडव यदि
जान जाये कि वसुषेण उनका अग्रज है, . पर पर समाज
समाज क्या कहेगा? गाधारी तो ऐसी पतिव्रता कि पति को नही
दिखता है तो अपने नेत्रो पर स्वय ही पट्टी बाधे है, और मै मैं
कन्या रहते हुए भी कुलटा! (फिर कुछ रुककर) ओह, यह यह
समाज

[विदुर का प्रवेश। विदुर कुन्ती का अभिवादन करते है। कुन्ती आशीर्वाद देती है।]

विदुर—तुम्हे सूचित करने आया हू, देवि, कि पाडव अज्ञातवास मे कुशलपूर्वक है।

कुन्ती—(उत्सुकता से) यह समाचार कहाँ से मिला है, विदुर? विश्वसनीय है?

विदुर—सर्वथा विश्वसनीय, कृष्ण ने भेजा है।

कुन्ती—और वे है कहाँ?

विदुर—यह कृष्ण के अतिरिक्त और कोई नही जानता। उन्होने उनके अज्ञातवास का प्रबन्ध किया है। पर उनका यह निश्चय है कि वर्ष के अन्त के पूर्व उनका पता कोई न लगा सकेगा।

कुन्ती—(लम्बी साँस लेकर) और उसके पश्चात् युद्ध अनिवार्य है।

विदुर—तुम्हारी मानसिक स्थिति का अनुमान करना उसके लिए कठिन नही, जो वसुषेण की उत्पत्ति का रहस्य जानता हो। कृष्ण, भीष्म और मेरे अतिरिक्त यह किसे ज्ञात है? हम उसका पूर्ण प्रयत्न करेगे कि या तो युद्ध ही न हो या वसुषेण कौरव पक्ष छोड़ दे।

कुन्ती—उसका कौरव पक्ष छोड़ना सम्भव है?

विदुर—हाँ, यदि उसे अपनी उत्पत्ति का सच्चा रहस्य ज्ञात हो जाए।

कुन्ती—(चिन्ताकुल स्वर में) किन्तु किन्तु तब तो जो बात सदा छिपी रही वही प्रकट .

विदुर—एक ओर पूर्ण संहार है और दूसरी ओर इस छोटी सी बात का प्रकट होना।

कुन्ती—छोटी, छोटी सी बात, विदुर! तुम इसे छोटी सी बात समझते हो? (कुछ रुककर) आह, समाज... समाज से घृणा, घोर घृणा रहते हुए भी, इस सामाजिक संगठन की जड खोदकर पूर्ण सामाजिक क्रान्ति की इच्छा रखते हुए भी,... विवाह और सतीत्व पर मन मे थोडी थोडी से थोडी श्रद्धा न रखते हुए भी,... समाज का कितना कितना अधिक भय है मुझे!

विदुर—तुम्हे ही नही, देवि, सब को यह भय रहता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। चाहे वह कुछ भी क्यो न सोचे, कुछ भी करने की इच्छा क्यो न करे, उसका अस्तित्व ही समाज के बिना नही रह सकता।

[चिन्ताग्रस्त कुन्ती इधर-उधर टहलने लगती है। विदुर उसकी ओर देखते है।]

लघु यवनिका

तीसरा दृश्य

स्थान—विराट नगर के बाहर का एक वन

समय—रात्रि

[एक सुनसान वन है, जो चन्द्रमा के प्रकाश के कारण कुछ दिखता है। एक वृक्ष के नीचे पांचो पाडव और द्रौपदी अपने अज्ञातवास के वेष में बैठे हुए है। सबसे विचित्र दिखता है बृहन्नला के वेष में अर्जुन। उनके

निकट ही कृष्ण बैठे हैं। कृष्ण के स्वरूप और वेष के वर्णन की आवश्यकता नहीं।]

युधिष्ठिर—ससार के इतिहास मे किसने किसको ऐसी सहायता दी है, जैसी आपने हमे दी, वासुदेव ?

भीम—जरासन्ध को मैं किसकी कृपा से मार सका ?

युधिष्ठिर—और क्या बिना उसके वध के हम राजसूय यज्ञ कर सकते थे ?

अर्जुन—पाशुपत अस्त्र मैं किसकी कृपा से पा सका ?

नकुल—दुर्वासा के शाप से हम किसकी अनुकम्पा से बचे ?

सहदेव—इस अज्ञातवास मे सफलतापूर्वक हमे कौन रखवा सका ?

द्रौपदी—सभा मे मेरा वस्त्र किसके योग-बल से बढा तथा मेरी लज्जा किसके अनुग्रह से बची ?

कृष्ण—तुमने तो इस प्रशसा म सीमा का भी उल्लघन कर दिया, सैरन्ध्री। द्वारका मे बैठे-बैठे मैने हस्तिनापुर की सभा का वृत्त जानकर वस्त्र बढा दिया ! क्या [illegible] क्या कहती हो, पाचाली ?

युधिष्ठिर—नही, ये ठीक कहती है, योगेश्वर। आप त्रिकालज्ञ है। अपने योगबल के कारण कहाँ क्या हो रहा है, इस सबके ज्ञान के लिए स्थान की दूरी और समय के बन्धन आपके लिए नही। आपको सब कुछ कर सकने की अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त है।

अर्जुन—और इन सिद्धियो का उपयोग आप लोक-कल्याण के लिए ही करते है।

भीम—हाँ, बृज म, मथुरा म आपने क्या-क्या किया ? द्वारका म आप क्या-क्या कर रहे है ?

युधिष्ठिर—फिर आपका कही कोई स्वार्थ नही। [illegible] [illegible] आपने न लिया। स्वय सम्राट् [illegible] राजसूय यज्ञ कर सका। [illegible] [illegible] रखने हुए भी वह मुझ से कराया।

अर्जुन—और अनेक वार आपके कृत्य प्रत्यक्ष मे बुरे तक दिखते है। युद्ध मे जरासन्ध एव कालयवन के सामने से भागने मे भी आपने कोई शका न की। परन्तु ऐसे कार्यो मे भी लोक-कल्याण का कितना वडा रहस्य छिपा रहता है।

नकुल—हाँ, यदि आप उस समय रणक्षेत्र से भागते नही, स्वय अपना अपमान जरासन्ध से न कराते तो शूरसेन देश मे हर वर्ष होने वाले रक्तपात का अन्त थोडे ही होता।

सहदेव—कदापि नही।

कृष्ण—(मुस्कराते हुए) आप सवको आज हुआ क्या है ? इतनी शीघ्रता से एक के पश्चात् दूसरा वोल रहा है कि मुझे तो कुछ कहने का अवसर ही नही मिलता। अच्छा, अब कृपा कर इस स्तुति का अन्त कीजिए।

भीम—यदुराज, आज हम सवके हृदय भरे हुए है। तेरह वर्ष के इन महान् विपत्ति-काल का अन्त दीख रहा है तथा यह अन्त हुआ है आपकी कृपा से। ऐसे अवसरो पर हृदय मे जो हिलोरे उठती है वे विना वहे शान्त नही होती। हम आपकी यह प्रशसा आपको प्रसन्न करने के लिए नही कर रहे है। हम जानते है न आपको प्रशसा से आनन्द होता है, न निन्दा से दुख। हमारे मुख से ये वाते अपने हृदय को हलका करने के लिए निकल रही है।

युधिष्ठिर—वासुदेव, हमारे लिए तो आप परमात्मा से कम नही।

कृष्ण—परन्तु आप लोगो की सहायता करना तो मै अपना कर्तव्य समझता हूँ, धर्म मानता हूँ। ससार के इतिहास मे इतना किसने भोगा है, धर्मराज, जितना आप सवने ? और इतने पर भी अपने धर्म को छोडने की आपके हृदय मे भावना तो दूर रही, कल्पना तक नही उठी। इसलिए धर्म की सस्थापना और ससार का कल्याण भी मै आपके उत्कर्ष मे ही देखता हूँ।

द्रौपदी—हम जानते हैं कि आप हमें सहायता के लिए उपयुक्त पात्र समझते हैं तभी तो हमें सहायता देते हैं। परन्तु धर्मराज की धर्मनिष्ठा आपके ही सतसंग का तो फल है।

कृष्ण—अच्छा, कम से कम इस समय इस वर्णन के अन्त कर देने की मैं आपसे प्रार्थना करूँगा। न तो यह स्थान ही इसके उपयुक्त है, न यह समय। इस समय तो हमें आगे के कार्यक्रम पर शीघ्र से शीघ्र विचार करना है। मैं युद्ध न होने पावे इसका हर प्रकार से प्रयत्न करूँगा, परन्तु युद्ध हुआ तो उसके लिए अभी से आपको तैयारी करनी होगी। इस युद्ध में आपको सबसे अधिक भय है वसुषेण से और इस भय की निवृत्ति तभी हो सकती है जब उसके कवच-कुंडल ले लिये जाएँ।

अर्जुन—तो यह सत्य है कि कवच-कुंडलों के रहते उसका वध नहीं हो सकता?

कृष्ण—मैं नहीं कह सकता, परन्तु संसार में कभी-कभी ऐसी घटनाएँ घटित हो जाती हैं, जो बुद्धि के परे की वस्तु होती हैं, उन्हें तर्क नहीं समझा सकता। कोई व्यक्ति इस प्रकार के कवच-कुंडलों सहित जन्म नहीं लेता, वसुषेण एक अपवाद है। कहा जाता है कि कवच-कुंडलों के रहते उसका वध नहीं हो सकता, तब कवच-कुंडल उसके पास रहने ही क्यों दिए जाएँ?

भीम—पर वह कवच-कुंडल देने क्यों लगा?

कृष्ण—ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करनी पड़ेगी जिससे उसे उन्हें देना ही पड़े। आप लोग जानते ही होंगे, ब्राह्मण जो भी मांगे, उन्हें देने की उसकी प्रतिज्ञा है।

युधिष्ठिर—हाँ, यह तो सभी जानते हैं।

कृष्ण—तो सुरपति को ब्राह्मण के रूप में उसके पास [illegible]।

युधिष्ठिर—सुरपति चले जायँगे?

कृष्ण—धनञ्जय पर उनकी विशेष कृपा रहती है। इन्हीं को [illegible] प्रार्थना करनी होगी।

अर्जुन—आप समझते है कि सुरपति के ब्राह्मण के रूप मे मॉगने से वह उन्हे कवच-कुडल दे देगा ?

कृष्ण—मुझे इसमे बहुत कम सन्देह है। वह एक ओर से यदि नीच दिखता है तो दूसरी ओर से इतना उच्च भी दिख पडता है जितना इस समय कदाचित् अन्य कोई व्यक्ति नही। उसे अपनी प्रतिज्ञा मिथ्या तो न करनी चाहिए।

[अर्जुन का मस्तक झुक जाता है।]

कृष्ण—फाल्गुन, तुममे और उसमे स्पर्धा या ईर्ष्या जो कुछ भी हो, परन्तु इतने पर भी तुम्हे उसे ठीक रीति से समझने का प्रयत्न करना चाहिए। वह अद्वितीय वीर है, अभी उसने सारी पृथ्वी जीतकर अपनी वीरता को सिद्ध कर दिया है। कवच-कुडल उसके पास रहे तो उसका जीता जाना असम्भव भी हो सकता है। कवच-कुडल के कारण न भी हो तो भी उनके रहते उनमे जो मानसिक बल रहेगा उसके कारण। तुम्हे सुरपति को उसके पास भेजना ही होगा।

अर्जुन—(सिर उठाते हुए) परन्तु परन्तु, कृष्ण, यह क्या वीरोचित कृत्य होगा यह तो

कृष्ण—(बीच ही में) अभी-अभी तुम्ही ने कहा था न कि अनेक बार प्रत्यक्ष मे मेरे कृत्य भी बुरे लगते हैं, मै युद्ध से भागा तक हूँ।

अर्जुन—पर आप समर्थ है, योगेश्वर।

कृष्ण—ससार मे सभी कुछ बातो मे समर्थ तथा कुछ मे असमर्थ होते हैं। पर यदि तुम मुझे समर्थ एव अपने को असमर्थ मानते हो तो इस कार्य के लिए मै तुम्हे आज्ञा देता हूँ, समर्थ की आज्ञा असमर्थ माने। (अट्टहास)

[कुछ देर निस्तब्धता।]

अर्जुन—अच्छा, आगे के कार्यक्रम की एक बात तो यह हुई, और ?

कृष्ण—अभी इतना ही, इसके आगे की बात अज्ञातवास की अवधि

समाप्त होने पर। (खड़े होकर सबसे) तो अब मैं तत्काल द्वारका लौटूंगा।

[सब खड़े हो जाते हैं।]

युधिष्ठिर—इतने शीघ्र ?

द्रौपदी—हाँ, इतनी शीघ्रता क्यों ?

कृष्ण—इस समय और काम ही क्या है ? फिर मेरे अधिक ठहरने में आप लोगों के प्रकट हो जाने का भय है।

लघु यवनिका

चौथा दृश्य

स्थान—हस्तिनापुर में कर्ण के भवन में कर्ण का शयनागार

समय—रात्रि

[शयनागार दूसरे कक्षों के समान ही है, अन्तर यही है कि चौकियों के स्थान पर इसमें दो पर्यंक बिछे हैं—एक कक्ष की दाहिनी भित्ति के निकट तथा दूसरा कक्ष की बायीं भित्ति के। दोनों पर्यंकों पर दो व्यक्ति शयन में निमग्न हैं, परन्तु प्रकाश अत्यन्त क्षीण होने के कारण सोने वाले पहिचान में नहीं आते। एकाएक पीछे की भित्ति पर प्रकाश फैल जाता है। यह प्रकाश एक मुख-मण्डल से निकलता हुआ दीख पड़ता है। इस प्रकाश में जो मुख दिखता है, उससे वह व्यक्ति कौन है, इसका अनुमान करने में कठिनाई नहीं होती। रक्त वर्ण का व्यक्ति है, रक्त वस्त्र, और स्वर्ण रत्नों के मुकुट, कुण्डल तथा आभूषण धारण किये है। मुख-मण्डल से रश्मियों के रूप में प्रकाश निकल रहा है। सूर्य के सम्मुख हाथ जोड़े हुए विनम्रता से झुका हुआ कर्ण खड़ा है।]

कर्ण—(उसी प्रकार खड़े-खडे गदगद् स्वर से) पढा था, प्राचीन ग्रन्थो मे पढा था, भगवान भास्कर, कि यदि इष्ट सच्चा हो तो देवता के प्रत्यक्ष दर्शन होते है, उससे वार्तालाप होता है। अपने इष्ट की सचाई पर मुझे अखड विश्वास था। एक बार आपने पहिले मुझे दर्शन देकर मेरे जन्म का रहस्य मुझे वताया था और आज फिर दर्शन देकर इस विश्वास को और भी पुष्ट कर रहे हैं। परन्तु जिनका पूजन, अर्चन, वन्दन, स्तुति मै नित्य ही मध्याह्न के उपरान्त तक किया करता हूँ, उन्ही को सामने पा सारा पूजन अर्चन भूल गया, न वन्दना स्मरण आती है, न स्तुति। समझ मे नही आता कि करूँ क्या ? उस दिन भी यही हुआ था, अव भी यही हो रहा है।

सूर्य—पूजन, अर्चन तथा वन्दना, स्तुति तो तुमने युगो से की, वत्स, आज मै तुम्हे और कुछ करने के लिए कहने को आया हूँ।

कर्ण—मै कभी आपकी आज्ञा टाल सकता हूँ, आज्ञा दीजिए, देव।

सूर्य—कल एक विशेप घटना घटित होने वाली है।

कर्ण—अच्छा।

सूर्य—मेरी उपासना के पश्चात् जव तुम ब्राह्मणो को दान देते हो, उस समय सुरपति ब्राह्मण का वेष धारण कर तुमसे भिक्षा माँगने आने वाले है।

कर्ण—सुरपति सूत से भिक्षा माँगने आवेगे, मेरा अहोभाग्य !

सूर्य—किन्तु वे भिक्षा किस वस्तु की माँगेगे, यह भी जान लो।

कर्ण—किसी भी वस्तु की हो, नाथ, ब्राह्मण के लिए मुझे अदेय क्या है ?

सूर्य—परन्तु जो वे माँगेगे वह तुम्हे अदेय ही होना चाहिए।

कर्ण—अपने सकल्प से मै भ्रष्ट हो जाऊँ, भगवन् ?

सूर्य—जिन दो वस्तुओ के कारण तुम युद्ध मे अवध्य हो, तुम्हारे कवच, कुडल, वे ही सुरपति तुमसे माँगने आएँगे।

कर्ण—(चौंककर) मेरे कवच, कुडल !

सूर्य—हाँ, तुम्हारे कवच, कुडल।

कर्ण—और आपकी क्या आज्ञा है ?

सूर्य—तुम्हे इन्हे कदापि न देना चाहिए।

कर्ण—परन्तु वे मेरे कवच-कुडलो का क्या करेगे ?

सूर्य—यही रहस्य तो तुम्हे समझाना है। तुम्हे निस्तेज करने के लिए पाडवो का यह षडयन्त्र है। और इसीलिए मैं कहता हूँ कि तुम्हे इन्हे नहीं देना चाहिए।

कर्ण—तो मुझे अपने संकल्प से भ्रष्ट हो जाना चाहिए ?

सूर्य—तुम यह कह सकते हो कि यह तो मेरे शरीर के साथ लगे है, इन्हे कैसे दिया जा सकता है ? इनके स्थान पर आप और जो कुछ चाहे मैं दे सकता हूँ।

कर्ण—परन्तु, प्रभो, ये तो मेरे शरीर के साथ लगे ही है, मेरे संकल्प के अनुसार तो यदि मेरे शरीर के अवयव, जिस हृदय से प्रत्येक मनुष्य जीवित है वह हृदय, अरे सारा शरीर ही कोई ब्राह्मण मांगे तो मुझे देना चाहिए।

सूर्य—कवच और कुडल का देना हृदय और सारे शरीर के देने से कम थोड़े ही है।

कर्ण—ठीक है, और ब्राह्मणो के मांगने पर मुझसे कुछ भी अदेय नहीं। संसार जानता है, वसुषेण का संकल्प। संसार क्या कहेगा—जब अन्न मांगा जाता था, वस्त्र मांगे जाते थे, सुवर्ण-रजत मांगा जाता था, रत्न-मणियाँ मांगी जाती थीं, गृह मांगे जाते थे, पृथ्वी मांगी जाती थी, वसुषेण सब कुछ देता था, इसलिए कि वे प्रचुर परिमाण में उसके पास थे। जब कोई महत्त्व की वस्तु मांगी गई कि भ्रष्ट हो गया उसका संकल्प, टूट गयी उसकी प्रचुर प्रतिज्ञा। प्रभो, संकल्प और प्रतिज्ञा की परीक्षा ऐसे ही कठिन समय में होती है।

सूर्य—किन्तु, यह तुम्हारे जीवन-मरण का प्रश्न है, वत्स ।

कर्ण—हाँ, जानता हूँ, भगवन् । कवच-कुडल युद्ध मे ही तो मेरी रक्षा कर सकते है, उनके कारण अस्त्र-शस्त्रो से मेरे प्राण नही जा सकते, परन्तु जिस दिन स्वाभाविक मृत्यु आएगी, उस दिन तो कवच-कुडल रहते भी मै मरूँगा, या नही ? मानव तो मर्त्य है, अमर्त्य नही, यह मृत्युलोक है, नाथ, स्वर्ग नही । सकल्प से भ्रष्ट होकर अकीर्ति के जीवन से कीर्तिमय मृत्यु कही श्रेयस्कर है ।

सूर्य—किन्तु जो रहा ही नही, उसको कीर्ति से क्या प्रयोजन ? मर जाने के पश्चात् कोई अपनी कीर्ति देखने नही आता । जीवित रहते हुए मनुष्य अपनी कीर्ति को उत्तरोत्तर बढा सकता है । मृतक को माला पहिनाने का जो मूल्य है वही मृत्यु के पश्चात् कीर्ति का । जीवन ही प्रधान वस्तु है, वत्स ।

कर्ण—मै जीवन को कम महत्त्व नही देता, भगवन् । उसको सुरक्षित रख, अधिक से अधिक दूर तक ले जाना, मै मानव का प्रधान कर्तव्य मानता हूँ । परन्तु, नाथ, जिसकी कीर्ति नष्ट हो गयी है वह चाहे जीवित दिखे किन्तु यथार्थ मे मरा हुआ है । हर परिस्थिति मे जीवन ही वाछित नही । यदि साधारणतया जीवन वाछित वस्तु है, तो ऐसे अपवाद के अवसर भी हो सकते है जब जीवन के स्थान पर मृत्यु ही वाछित हो । फिर शरीर का मरण अवश्यभावी है । मरण के पश्चात् मनुष्य कीर्ति रूप से ही जीवित रह सकता है । मै मरण के साथ मर जाना नही चाहता । जो हर परिस्थिति मे शरीर से जीवित रहना चाहता है उस जीवन-लोलुप से अधिक पतित क्या है ? पाडव ही सुरपति को छद्मवेष मे भेज रहे है न ?

सूर्य—हाँ ।

कर्ण—यदि वे मेरे सकल्प का अनुचित लाभ उठाना चाहते है, तो उन्हे जीने दीजिए, देव, मै मृत्यु का सहर्ष आलिगन करने को प्रस्तुत हूँ । इस प्रकार कवच-कुडलो से रहित करा पाडवो ने मुझे जीत भी लिया तो

उस विजय मे उनको कोई यश लाभ न होगा। (कुछ रुककर) नाथ, आप मेरे इष्ट है, मेरे उपास्य, और सृष्टि मे मुझे सबसे अधिक प्रिय, एव मान्य। मै आपको कितना प्यारा हूँ यह इसीसे प्रकट है कि आप मुझे यह सब कहने को पधारे। आपके सम्मुख मेरा अधिक कहना धृष्टता घोरतम धृष्टता है, परन्तु प्रार्थना करता हूँ कि इस सम्बन्ध मे मुझे अब आप अधिक न कहे, वरन् मै आपसे वर माँगता हूँ, मुझे वर दे, भगवन्, कि मै अपने सकल्प पर दृढ रह सकूँ।

सूर्य—(गद्गद् स्वर से) मै नही जानता था, वत्स, कि जीवन और मृत्यु दोनो ही तुम्हारे दोनो हाथो मे दो कन्दुको के सदृश है। यदि तुम इतने दृढ-प्रतिज्ञ हो, तो कवच-कुडलो के दान की मै तुम्हे अनुमति देता हूँ। तुम मे इतना पौरुष है कि इतने पर भी अर्जुन के साथ युद्ध मे उसे तुम पराजित करोगे या वह तुम्हे, यह भी कोई नही कह सकता। पर तुम एक काम अवश्य करो, सुरपति को ज्योही तुम कवच कुडल दोगे वे प्रसन्न हो तुमसे वर माँगने को कहेगे। सुरो मे यह प्रथा ही है। तुम उनसे उनकी शक्ति माँग लेना। उनकी शक्ति ऐसी है जो प्रहार के पश्चात् बिना शत्रु की मृत्यु के नही लौटती। कौरव-पाडव युद्ध हुआ ही तो अर्जुन के साथ समर के समय यह शक्ति तुम्हारे काम आएगी।

[पीछे की तरफ भित्ति का प्रकाश एकाएक लुप्त हो जाता है, न सूर्य दिखते है, न कर्ण।]

पर्यंक पर शयन करने वाला एक व्यक्ति—(अँगडाई लेकर उठते हुए) हे, कैसा कैसा अद्भुत स्वप्न!

[स्वर से जान पडता है कि कर्ण का स्वर है।]

लघु यवनिका

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—हस्तिनापुर का गगातट

समय—मध्याह्न

[गगा का तीर और तट की रेत मध्याह्न के सूर्य के प्रकाश में चमक रही है, पर सूर्य के दर्शन नहीं होते। कर्ण कौशेय का सोला पहिने तथा उपरना ओढे खडा हुआ पूर्व की ओर ऊपर देखते हुए सूर्य से कह रहा है। उसके एक ओर रेत पर अन्न वस्त्र इत्यादि नाना प्रकार की वस्तुएँ दान देने के लिए रखी हुई है।]

कर्ण—यह यह, प्रभो, विश्व मे कैसी कैसी अद्भुत बात है कि प्राय जब मनुष्य अपनी प्रगति की चरमसीमा पर पहुँचता है तभी उनके पतन के साधन जुटने लगते है। ससार की दिग्विजय कर जब मै विश्व-विजयी कहलाया तभी मेरे कवच-कुडल जाने की यह योजना। तो तो, नाथ, सुरपति आते ही होगे। सुरपति भिखारी के रूप मे। इसके पूर्व भी कभी उन्होने यह रूप धारण किया ? . विष्णु ने तो किया था। . वे तो बलि से भिक्षा माँगने वामन रूप धारण कर गये थे। किन्तु किन्तु वे तो स्वय ही ठगे गये। . उन्हे उन्हे तो फिर पाताल मे बलि के प्रहरी का काम करना पडा। इन्द्र को विष्णु का ज्येष्ठ भ्राता भी कहा है। तो अनुज ने बलि से भीख माँगी, एक दैत्य से, तथा अग्रज मुझ से भिक्षा माँगने आ रहे है, एक सूत से। विष्णु ठगे गये थे और सुरपति ? . शक्ति तो, नाथ, तुम्हारी आज्ञा से मै माँगूंगा, पर पर जो दान मै दूंगा, उनका और शक्ति का क्या एक ही मूल्य है ? नही, भगवन्, अन्तर बहुत बडा अन्तर है। शक्ति के मिलने के पश्चात् भी युद्ध मे मेरा वध सम्भव है, परन्तु कवच, कुडलो के रहते नही। तब तब शक्ति माँगूं ही क्यो ? दान भी राजस दान हो

जाएगा, नहीं नहीं व्यापार, एवं परिवर्तन में जो वस्तु मिलेगी
वह भी उचित मूल्य की नहीं। (कुछ ठहरकर) और यदि कवच-कुंडल ही
न दूँ तो ? तुमने तो रात्रि को यही कहा था कि न दो।
ब्राह्मण को मुँह माँगी वस्तु देना मेरा व्रत है, पर जो ब्राह्मण नहीं है
ब्राह्मण का रूप धारण कर आता है, झूठा ब्राह्मण, छद्मवेषी ब्राह्मण, [illegible]
के उद्देश्य से शत्रुओं को सहायता पहुँचाने, उसे तो मैं नाहीं कर सकता हूँ।
(कुछ रुककर) परन्तु बलि ने यह जानकर कि वामन ब्राह्मण नहीं, विष्णु
हैं, दान दिया, गुरु शुक्राचार्य की आज्ञा तक का उल्लंघन कर, [illegible]
पृथ्वी तो उसके पास रह ही नहीं सकती थी, वह तो एक दिन जाती ही,
कवच-कुंडल न देने पर भी शरीर तो एक दिन जाएगा ही, [illegible], [illegible]
का यश रह गया, मेरा भी रह जाएगा, भगवन्। (फिर कुछ रुककर)
परन्तु कवच-कुंडल का दान सुयोधन को दिये हुए वचन के विरुद्ध तो नहीं
जाता ? (फिर कुछ रुककर) जाता है, अवश्य [illegible] ही
जाता है। अपनी सारी शक्ति मैं उसके अर्पण कर चुका हूँ। कवच-
कुंडल का दान क्या उस अर्पित शक्ति को घटाना नहीं है ? (फिर कुछ
रुककर) अवश्य अवश्यमेव घटाना है। तब [illegible]
दान कैसे हो सकता है, प्रभो ? (फिर कुछ रुककर) परन्तु परन्तु,
देव, प्रतिज्ञा-भंग करने पर सच्ची शक्ति मुझ में बचती ही कहाँ है ?
और एक बार जहाँ प्रतिज्ञाभंग का आरम्भ हुआ वहाँ [illegible]
साथ देने की प्रतिज्ञा भी कब तक अचल रह सकेगी ? (फिर कुछ रुककर)
नहीं, नहीं, सुयोधन को दिये हुए वचन का [illegible] प्रतिपालन भी [illegible]
सत्य पर स्थिर रहने में ही हो सकता है। [illegible]
से कवच-कुंडलों का दान अनिवार्य है। (फिर कुछ रुककर) और यदि
शक्ति न माँगूँ तो ? (फिर कुछ रुककर) [illegible] न माँगूँगा, [illegible]
ने वर माँगने को कहा तो माँगने में क्या हानि है ? [illegible]
वर माँगने के लिए कहने पर ही उनसे [illegible]। (कुछ रुककर)

और . और शक्ति मिलने के पश्चात् ? . अर्जुन के अतिरिक्त कौन मेरा सामना कर मकता है ? अर्जुन के लिए वह शक्ति यथेष्ट होगी। (फिर कुछ रुककर) किन्तु किन्तु शक्ति तो मुझ से माँगी न जाएगी। वह वह तो व्यापार होगा। मैंने दान दिये है, पर दान मे व्यापार नही किया। (फिर कुछ रुककर) पर पर जो कुछ रात्रि को देखा वह स्वप्न ही तो था। प्रभो, यह यह सब होगा भी ? स्वप्न प्राय झूठे ही होते है। (कुछ रुककर) और यदि यह स्वप्न सत्य हुआ तव तो पहिला स्वप्न जिस . जिस स्वप्न मे आपने मुझे अपना और कुन्ती का पुत्र कहा था वह हाँ, वह भी सत्य ही मानना होगा। (नेपथ्य में गान आरम्भ होता है।) मध्याह्न के उपरान्त का आरम्भ हो गया। (चारो ओर देखकर) अभी . अभी तो सुरपति दृष्टिगोचर नही होते।

[गान की ध्वनि तीव्र होती है। दान लेने वाले ब्राह्मण प्रवेश करते है। कर्ण दान देना प्रारम्भ करता है। गान चलता रहता है।]

गान

वीणा, गा तू यमुना-तीर।
दानवीर के यश परिमल को
विखरा अन्तर चीर।
दिन मणि बाँट रहा नव-जीवन,
शुभ्र चमकते सिकता के कण,
लूट रहा किरणो से छवि-धन
कल-कल वहता नीर।
मन चाहा पायेगा हर नर,
अन्न, वसन, धरती, मणि सुन्दर,
दान पर्व आये है द्विजवर,
वटती जाती भीर।

'देना' जिसका जीवन सम्बल,
कौन तोल सकता उसका बल,
परहित में रह जिसके प्रतिफल
मन में परहित पीर।
वीणा, गा तू यमुना-तीर।

[कर्ण ध्यानपूर्वक सारे ब्राह्मणों को देखता और जो-जो वस्तु मांगता है, वह उसे दान में देता जाता है। धीरे-धीरे ब्राह्मणों की भीड़ घटती और समाप्त हो जाती है। कर्ण जाने के लिए उद्यत होता है, पर फिर चारों ओर देखता है।]

कर्ण—तो झूठा .. झूठा स्वप्न था और पहिला ... पहिला स्वप्न भी मिथ्या। (कुछ रुककर) कवच-कुंडल रह गये, पर ... पर इनके रहने पर सन्तोष न होकर विचित्र प्रकार का असन्तोष, एक क्षोभ सा क्यों

[एक तेजस्वी ब्राह्मण का प्रवेश। कर्ण की दृष्टि उस पर पड़ती है। कर्ण प्रणाम करता है और ब्राह्मण हाथ उठाकर आशीर्वाद देता है।]

ब्राह्मण—मैं भी एक याचक ब्राह्मण हूं, राजन्।

कर्ण—आज्ञा दीजिए, मेरे सद्भाग्य से ही आप पधारे हैं, क्या [illegible] आपकी, आर्य?

ब्राह्मण—मुझे चाहिए तुम्हारे कवच-कुंडल।

कर्ण—(हँसकर) कवच-कुंडल, आर्य! कवच-कुंडल तो मेरे शरीर के अवयवों के सदृश हैं। ये कैसे पृथक् किये जा सकते हैं?

ब्राह्मण—परन्तु मैंने तो यह सुना था कि ब्राह्मण को [illegible] भी अदेय नहीं। यदि तुम्हारे अवयव और सारा शरीर भी ब्राह्मण मांगे तो तुम उसे दे दोगे।

कर्ण—(हँसकर) और यदि मांगनेवाला [illegible] ब्राह्मण न हो तो?

ब्राह्मण—(चौंककर, पर तत्काल सँभलकर) तो तुम दान लेने के पूर्व इसकी जांच किया करते हो कि याचको मे कौन ब्राह्मण है तथा कौन नही ? तब तब तो तुम याचक का अपमान कर दान देते हो। फिर तो वह तामसी दान हो जाता है।

कर्ण—(मुस्कराते हुए) मैंने कभी किसी याचक की जाँच नही की, आर्य, तथा ब्राह्मण को यथार्थ मे मुझे कुछ भी अदेय नही। यद्यपि इन कवच-कुडलो के कारण मैं युद्ध मे अवध्य हूँ तथापि सकल्प को सूत होते हुए भी मैं मिथ्या न होने दूंगा। आप मेरे कवच-कुडल ले ले, मैं देता हूँ, आर्य।

[खड्ग उठाकर कवच और कुडलो को काटता है। शरीर से रक्त बहने लगता है, पर मुख पर पीड़ा झलकती तक नहीं।]

ब्राह्मण—(गद्‌गद् स्वर में) जैसा तुम्हारा यश सुना था तुम सचमुच में वैसे ही निकले। अपने सकल्प, अपनी प्रतिज्ञा पर इस प्रकार कदाचित् ही कोई दृढ रहा हो। और ऐसा . ऐसा महान् दान तो विश्व के इतिहास में आज पर्यन्त किसी ने नही दिया।

कर्ण—(रक्त से लथ-पथ कवच कुडलो को ब्राह्मण को देते हुए) और दान देने के पश्चात् तो मैं आपकी जाँच कर सकता हूँ, भगवन् ! अब तो यह अपमान न होगा ? नाथ, अब तो मेरा दान तामसी न होगा ? (कवच-कुडल दे, पृथ्वी पर सिर रख, प्रणाम करते हुए) यह वसुषेण देव-देवेश इन्द्र को प्रणाम करता है। जो स्वय सब कुछ देने की सामर्थ्य रखते है उन्होंने मुझ से माँगकर मेरा तो गौरव ही बढाया है। यदि इस दान के कारण युद्ध मे मेरी मृत्यु हुई तो मैं तो सीधा आपके लोक को आऊँगा, पर इस लोक मे सदा आपकी हँसी ही होती रहेगी।

इन्द्र—(कर्ण को उठाकर उसका आलिगन करते हुए) तो तुम मुझे पहिचान गये, दानवीर कर्ण, अब तुम जो चाहो सो मुझ से माँग सकते हो।

कर्ण—मुझे कुछ नही चाहिए, देवेश, मुझ पर अनुग्रह रहे, यही मै चाहता हूँ।

इन्द्र—तथास्तु। परन्तु, महाभाग, गुरो के दर्शन निरर्थक नही होते अत मै तुम्हे अपनी अमोघ शक्ति देता हूँ। युद्ध मे एक बार तुम्हारे लिए उपयोगी हो, उसके पश्चात् यह फिर मेरे पास लौट आएगी।

यवनिका

चौथा अङ्क

पहिला दृश्य

स्थान—विराट नगर के राज प्रासाद का उद्यान

समय—सन्ध्या

[उद्यान की बनावट कर्ण के उद्यान के सदृश ही है। पत्थर की चौकियो पर पाडव, द्रौपदी और कृष्ण बैठे हुए है। पाडव और द्रौपदी अब अपनी साधारण वेश-भूषा में है। कृष्ण को छोडकर सब चिन्ताग्रस्त है।]

युधिष्ठिर—किन्तु, वासुदेव, अनेक का मत है कि हमने वन के बारह वर्ष और अज्ञातवास के एक वर्ष का पूरा समय नही निकाला।

कृष्ण—मूर्ख है जो ऐसा कहते है।

युधिष्ठिर—नही, नही, यदुपति, अनेक प्रकाड पडितो तक का यह मत

कृष्ण—(बीच ही में) सब पडित बुद्धिमान नही होते, प्रकाड पडित होते हुए भी मनुष्य वज्र मूर्ख हो सकता है। मेरा स्पष्ट मत है कि आपने वह सारा समय निकाल दिया है। मेरा मत आपके लिए अन्तिम मान्य मत होना चाहिए। अत इस विषय का तो अन्तिम निर्णय हो गया। अब हमे आगे का विचार करना है। (युधिष्ठिर को छोड सब प्रसन्न हो जाते है।) देखिए, युद्ध-घोषणा के पूर्व यह आवश्यक है कि आप महाराज धृतराष्ट्र के पास अपना दूत भेजकर सन्धि का प्रयत्न करे।

द्रौपदी—(आश्चर्य से) अब सन्धि का प्रस्ताव।

भीम—(और भी आश्चर्य से) हाँ, यह आप क्या कर रहे है ?

कृष्ण—यह प्रयत्न तो करना ही होगा। तुम लोग क्या यह चाहते हो कि बिना इस प्रस्ताव के ही युद्ध-घोषणा कर दी जाए?

द्रौपदी—क्या हमने अब तक कम सहा है, यदुराज? क्या हमारे कष्ट तत्काल युद्ध घोषणा के लिए हमें अधिकार नहीं देते?

भीम—आपने स्वयं एक दिन कहा था कि संसार में किसी इतना सहा है जितना हमने।

कृष्ण—हाँ, आपको बहुत सहना पड़ा है, इसमें सन्देह नहीं। कदाचित् जगत् में किसी को इतना नहीं सहना पड़ा होगा। परन्तु फिर भी बिना सन्धि के प्रयत्न के युद्ध-घोषणा नैतिक दृष्टि से किसी प्रकार भी उचित नहीं कही जा सकती। और यह प्रयत्न भी सच्चा प्रयत्न होना चाहिए, लोग दिखावे के लिए नहीं, हृदय से। यदि कुछ झुककर, दबकर भी सन्धि हो सके, युद्ध बचाया जा सके, तो युद्ध के रोकने का पूरा-पूरा यत्न होना चाहिए। युद्ध कोई अच्छी वस्तु नहीं है, हिंसा और रक्तपात किसका भला कर सकते हैं?

भीम—किन्तु दुर्योधन ने हमें राजच्युत किया, छल से, वह जानता है अब युद्ध होगा ही, सन्धि का प्रस्ताव उसे भेजना चाहिए।

कृष्ण—वह उचित बात नहीं करता, तो आप भी न करें, यह तो कोई तर्क नहीं, भीम। वे सन्धि का सन्देश नहीं भेजते तो तुम्हें भेजना चाहिए, एक दूत के साथ जो आपकी ओर से पूर्ण अधिकार रखता हो, जो वहाँ जाकर जो कुछ भी कर आये उसे आप सहर्ष मानें।

अर्जुन—(विचारते हुए) यदि आप सन्धि [illegible] चाहते हैं, दिखावा नहीं, तथा ऐसा दूत भेजना चाहते हैं, [illegible] हो और जिसके किये हुए कार्य [illegible] इस कार्य के योग्य [illegible], यदुराज, [illegible]

[illegible]।

कृष्ण—(मुस्कराते हुए) तुम क्या [illegible]

अर्जुन—राजसूय यज्ञ मे हमने जिसे विश्व का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति मान जिसकी अग्र पूजा की, उसे दूत बनाकर भेजने के प्रस्ताव करने मे मुझे कुछ कम हिचक नही हो रही है, पर आपकी हम पर इतनी कृपा है, इतना स्नेह, कि हम इस धृष्टता का भी साहस कर सकते है ।

कृष्ण—हां, हां, मै सहर्ष आपका दूत बनकर जाने को प्रस्तुत हूं, वरन् मै तो स्वय ही यह प्रस्ताव करने वाला था, क्योकि एक काम हस्तिनापुर मे ऐसा है जो मेरे अतिरिक्त अन्य किसी से हो ही नही सकता । यदि सन्धि का यत्न सफल न हुआ तो वसुषेण को कौरवो से विमुख कर अपनी ओर करने का प्रयत्न करना होगा । यद्यपि उसके कवच-कुडल चले गये है, पर वीरता एव पौरुष थोडे ही गया है ।

भीम—(हर्ष से गद्‌गद् होकर) यदि आप दूत बनकर जाने को प्रस्तुत है तो हमे सन्धि के प्रयत्न मे कोई आपत्ति नही ।

द्रौपदी—(हर्ष से) किंचित् नही ।

नकुल—(हर्ष से) थोडी भी नही ।

सहदेव—(हर्ष से) आपत्ति का लेश मात्र भी नही ।

युधिष्ठिर—परन्तु परन्तु, वासुदेव, हमारे वन के बारह वर्ष और अज्ञातवास का एक वर्ष का समय हो गया, इसमे तो आपको कोई सन्देह

कृष्ण—(बीच ही में) ओह ! धर्मराज, धर्मराज, किस प्रकार आपको समझाऊँ मै ? वह समय पूरा हो गया, निश्चयपूर्वक हो गया, इसमे सन्देह का कोई स्थान ही नही, और यदि न हुआ हो तथा इसके कारण कोई अधर्म हो रहा हो तो उसका पाप मेरे सिर पर। आचार्य सदीपनी के आश्रम मे मैने जो ज्योतिष-शास्त्र का अध्ययन किया है, वह व्यर्थ नही। उज्जयनी नगरी आज भारत में ज्योतिष विद्या के लिए सबसे अधिक प्रसिद्ध है, और वही मैने इस विद्या को सीखा है । मै गणना करके कहता हूं कि बारह वर्ष और बारह मास पूरे हो चुके है । चार पाडवो को तो मै आज्ञा

अर्जुन—राजसूय यज्ञ मे हमने जिसे विश्व का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति मान जिसकी अग्र पूजा की, उसे दूत बनाकर भेजने के प्रस्ताव करने मे मुझे कुछ कम हिचक नही हो रही है, पर आपकी हम पर इतनी कृपा है, इतना स्नेह, कि हम इस धृष्टता का भी साहस कर सकते है।

कृष्ण—हाँ, हाँ, मै सहर्ष आपका दूत बनकर जाने को प्रस्तुत हूँ, वरन् मै तो स्वय ही यह प्रस्ताव करने वाला था, क्योकि एक काम हस्तिनापुर मे ऐसा है जो मेरे अतिरिक्त अन्य किसी से हो ही नही सकता। यदि सन्धि का यत्न सफल न हुआ तो वसुषेण को कौरवो से विमुख कर अपनी ओर करने का प्रयत्न करना होगा। यद्यपि उसके कवच-कुडल चले गये है, पर वीरता एव पौरुष थोडे ही गया है।

भीम—(हर्ष से गद्गद् होकर) यदि आप दूत बनकर जाने को प्रस्तुत है तो हमे सन्धि के प्रयत्न मे कोई आपत्ति नही।

द्रौपदी—(हर्ष से) किंचित् नही।

नकुल—(हर्ष से) थोडी भी नही।

सहदेव—(हर्ष से) आपत्ति का लेश मात्र भी नही।

युधिष्ठिर—परन्तु परन्तु, वासुदेव, हमारे वन के बारह वर्ष और अज्ञातवास का एक वर्ष का समय हो गया, इसमे तो आपको कोई सन्देह

कृष्ण—(बीच ही में) ओह! धर्मराज, धर्मराज, किस प्रकार आपको समझाऊँ मै? वह समय पूरा हो गया, निश्चयपूर्वक हो गया, इसमे सन्देह का कोई स्थान ही नही, और यदि न हुआ हो तथा इसके कारण कोई अधर्म हो रहा हो तो उसका पाप मेरे सिर पर। आचार्य सदीपनी के आश्रम मे मैने जो ज्योतिष-शास्त्र का अध्ययन किया है, वह व्यर्थ नही। उज्जयनी नगरी आज भारत मे ज्योतिष विद्या के लिए सबसे अधिक प्रसिद्ध है, और वहीं मैने इस विद्या को सीखा है। मै गणना करके कहता हूँ कि बारह वर्ष और बारह मास पूरे हो चुके है। चार पाडवो को तो मै आज्ञा

गान

मौन उन्मन-प्राण-शतदल !
यह तिमिर अविरल विरह क्षण दे गया कोई वहाँ ढल !

अश्रु सी नीरव बही हैं
अमर सुधियों की उमंगें,
विकल सरिता की कहानी
कह रही सागर तरंगें।
हा ! मिलन का शाप लेकर, मूक हैं वे गीत कल कल !

कान्तिमय यह दीप जलता
रश्मियाँ अपनी लुटाता,
ज्योति स्वर्णिम केलि करती
नेह चुप कोई जलाता,
मैं तिमिर बन बन मिटूँ, पर जिये वह आलोक चंचल !

वेदना संचित युगों की
नाश का शृंगार करती,
भावनाएँ श्रान्त विभ्रम
रिक्त मेरे पात्र भरती।
शेष अभिनय औ' यवनिका, हन्त कहता देखती चल !
मौन उन्मन-प्राण-शतदल !

[कृष्ण का प्रवेश। कृष्ण को देखते ही कुन्ती अत्यन्त आतुरता से उस ओर झपटती हैं। कृष्ण उनके चरण स्पर्श करते हैं। कुन्ती कृष्ण को खींचकर हृदय से लगा लेती हैं। कुन्ती के नेत्रों के अश्रु कृष्ण का अभिषेक सा करते हैं। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

कुन्ती—परन्तु कई प्रकाड पडित भी उसके साथ है।

कृष्ण—उसके पास इस समय सत्ता है, ऐश्वर्य है, अत ये पडित उसके क्रीत दास है। कुरुदेश के सबसे बडे पडित इस समय भीष्म है। मैं यह विषय उनके निर्णय पर छोड दूँगा।

कुन्ती—(कुछ घबड़ाकर) किन्तु... किन्तु वे अपना निर्णय सुयोधन के विपक्ष मे देगे ?

कृष्ण—उनके निर्णय के आधार होगे सत्य और धर्म।

कुन्ती—पर जिस समय द्यूत हुआ था, उस समय उनके सत्य और धर्म कहाँ गये थे ?

कृष्ण—मै तो नही मानता कि उस समय भी उन्होने सत्य और धर्म को छोडा था।

कुन्ती—(विचारते हुए) यदि भीष्म का निर्णय हुआ कि तेरह वर्ष नही बीते ?

कृष्ण—तो पाडवो को वन और अज्ञातवास की पुनरावृत्ति करनी पडेगी।

कुन्ती—और यदि दुर्योधन ने भीष्म का निर्णय मानकर सन्धि स्वीकार न की ?

कृष्ण—तो युद्ध होगा।

[कुछ देर निस्तब्धता।]

कुन्ती—(गम्भीरता से विचारते हुए) और और युद्ध मे, बेटा, पाडव एक ओर से तथा वसुषेण दूसरी ओर से लडेगे ?

कृष्ण—इसे रोकना ही मेरे दूत बनकर आने का प्रधान कारण है। मै वसुषेण को उसके जन्म का सच्चा रहस्य जताकर पाडवो की ओर करने का प्रयत्न करूँगा।

कुन्ती—(घबडाकर) तब तब तो सारा ससार उस रहस्य को जान जाएगा।

कुन्ती—(आँसू साडी के छोर से पोछते हुए) बेटा, कितने . . . कितने युग बीत गये। कितने समय के पश्चात् सुधि ली।

[दोनो चौकियो पर बैठ जाते है।]

कृष्ण—बहुत समय के पश्चात् आया यह तुम कह सकती हो, किन्तु सुधि तो ऐसा कोई दिवस नही, जब मै तुम्हारी न करता होऊँ।

कुन्ती—तुम तो स्वस्थ हो ? द्वारका मे तो सब कुशलपूर्वक है ?

कृष्ण—तुम्हारा आशीर्वाद है, माँ।

कुन्ती—और विराट नगर मे द्रौपदी सहित तुम्हारे भाई कैसे है ?

कृष्ण—बहुत अच्छे, तुम्हे अनेकानेक प्रणाम कहलाए है। सबमे अधिक उत्कठा यदि उन्हे किसी बात की है तो तुम्हारे दर्शनो की।

कुन्ती—तुम्हारे रहते हुए भी उन्होने कैसे. . . .कैसे कष्ट पाये !

कृष्ण—माँ, यह ससार ही ऐसा है। यहाँ कोई किसी के कष्ट को रोक सकता है ? परन्तु इस कष्ट रूपी अग्नि से वे उसी प्रकार शुद्ध होकर निकले है जैसे स्वर्ण तपकर निकलता है। फिर, माता, जगत मे तप को ही महत्त्व है। राम कष्ट पाने के ही कारण तो विश्व मे इतने महान् हो गये। धर्मराज का नाम भी इस तपस्या के कारण ही सार्थक हुआ।

कुन्ती—(दीर्घ निश्वास छोडकर) और अब युद्ध होगा ?

कृष्ण—मैं आया तो इसी के लिए हूँ कि युद्ध न हो। प्राणपण से चेष्टा करूँगा कि युद्ध रुक जाये।

कुन्ती—परन्तु यहाँ जो सुन पडता है, उससे तो यही ज्ञात होता है कि सन्धि की सम्भावना नही। सुयोधन का कहना है कि पाडवो ने तेरह वर्ष की वन और अज्ञातवास की अपनी अवधि पूरी नही की, वे एक वर्ष के अज्ञातवास के पूर्व ही प्रकट हो गये। अत उन्हे वन और अज्ञातवास की द्वितीय आवृत्ति करनी चाहिए।

कृष्ण—वह स्वार्थी है इसलिए ऐसी बात कह रहा है।

कुन्ती—परन्तु कई प्रकाड पडित भी उसके साथ है।

कृष्ण—उसके पास इस समय सत्ता है, ऐश्वर्य है, अत ये पडित उसके क्रीत दास है। कुरुदेश के सबसे बडे पडित इस समय भीष्म है। मै यह विषय उनके निर्णय पर छोड दूंगा।

कुन्ती—(कुछ घबड़ाकर) किन्तु... किन्तु वे अपना निर्णय सुयोधन के विपक्ष मे देगे ?

कृष्ण—उनके निर्णय के आधार होगे सत्य और धर्म।

कुन्ती—पर जिस समय द्यूत हुआ था, उस समय उनके सत्य और धर्म कहाँ गये थे ?

कृष्ण—मै तो नही मानता कि उस समय भी उन्होने सत्य और धर्म को छोडा था।

कुन्ती—(विचारते हुए) यदि भीष्म का निर्णय हुआ कि तेरह वर्ष नही बीते ?

कृष्ण—तो पाडवो को वन और अज्ञातवास की पुनरावृत्ति करनी पडेगी।

कुन्ती—और यदि दुर्योधन ने भीष्म का निर्णय मानकर सन्धि स्वीकार न की ?

कृष्ण—तो युद्ध होगा।

[कुछ देर निस्तब्धता।]

कुन्ती—(गम्भीरता से विचारते हुए) और और युद्ध मे, बेटा, पाडव एक ओर से तथा वसुषेण दूसरी ओर से लडेगे ?

कृष्ण—इसे रोकना ही मेरे दूत बनकर आने का प्रधान कारण है। मै वसुषेण को उसके जन्म का सच्चा रहस्य जताकर पाडवो की ओर करने का प्रयत्न करूँगा।

कुन्ती—(घबड़ाकर) तब तब तो सारा ससार उस रहस्य को जान जाएगा।

कृष्ण—संसार क्या जानता है, क्या नहीं, इसकी भी चिन्ता रहना चाहिए ?

कुन्ती—किन्तु किन्तु, बेटा, समाज क्या कहेगा ? तुम्हारी बुआ और गांधारी का मिलान कर करके कैसे कैसे कटाक्ष होंगे ? कैसी कैसी हँसी उड़ायी जाएगी ?

कृष्ण—बहुत बहुत छोटी बात सोच रही हो, माँ। इन बातों की चिन्ता न कर जो बातें उचित हों, संसार व समाज के लिए हितकारी, वे करते जाना चाहिए। फिर ये कटाक्ष उसी क्षण बन्द हो जाएँगे जब इस प्रकार कटाक्ष करने और हँसी उड़ाने वालों के सिरों की सीढ़ियाँ बना कर उन पर से चढ़ते हुए वसुषेण हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठेगा।

कुन्ती—(कुछ आश्चर्य से) राजा वसुषेण होगा ?

कृष्ण—अवश्य, ज्येष्ठ वही है।

कुन्ती—(विचारते हुए) परन्तु वह तुम्हारा कहना मानकर कौरवों का संग छोड़ देगा ?

कृष्ण—मेरा कहना न मानेगा तो तुम्हें उसके पास जाना होगा।

कुन्ती—(आश्चर्य से) मुझे !

कृष्ण—हाँ, माता का सन्तान पर जितना प्रभाव पड़ता है, उतना किसी का नहीं।

[कुन्ती नत मस्तक हो विचारमग्न हो जाती है। कृष्ण कुन्ती की ओर देखते रहते हैं। कुछ देर निस्तब्धता।]

कुन्ती—(धीरे-धीरे सिर उठाते हुए) तुम समझते हो वह मेरा कहना मान लेगा ?

कृष्ण—मैं नहीं जानता, पर, हाँ, उचित बात का प्रयत्न तो करना ही चाहिए, फल जो चाहे सो निकले। (कुछ ठहरकर उठते हुए) अच्छा, तो अब सभा का समय हो रहा है, मैं चलूँगा।

कुन्ती—(खड़े होकर) पर भोजन ?

कृष्ण—भोजन इस समय विदुर के साथ करना है।

कुन्ती—(जैसे कोई भूली बात स्मरण आ गई हो) हाँ, एक बात तो मैं कहना ही भूल गयी।

कृष्ण—(रुककर) क्या, माँ ?

कुन्ती—यह भी सुना था कि कौरवो ने तुम्हे वन्दी करने का षडयन्त्र रचा है।

कृष्ण—(अट्टहास कर) ऐसा! कोई हानि नही। कुछ समय हस्तिनापुर के कारागार मे रहने से विश्राम मिल जाएगा। (जाते हुए) तुम निश्चिन्त, सर्वथा निश्चिन्त रहो, माता। (प्रस्थान।)

कुन्ती—(कुछ देर तक जिस द्वार से कृष्ण गये हैं उसी द्वार की ओर देखते हुए) यह कृष्ण भी परब्रह्म के समान अज्ञेय ही है। 'नेति-नेति' के सिवा और क्या क्या कहा जाए इसके इसके लिए भी।

लघु यवनिका

तीसरा दृश्य

स्थान—हस्तिनापुर के राजप्रासाद का सभाकक्ष

समय—अपराह्न

[धृतराष्ट्र सिंहासन पर और भीष्म, द्रोण, कृप, दुर्योधन, दु:शासन, कर्ण, अश्वत्थामा, विकर्ण चौकियो पर बैठे हैं। कर्ण के कवच कुडल चले जाने पर भी उसकी तेजस्विता में कोई विशेष अन्तर नहीं पडा है।]

भीष्म—(धृतराष्ट्र से) जो प्रस्ताव मैंने द्वैतवन से सुयोधन के लौटने पर किया था, वही मैं फिर करता हूँ, महाराज। पाडवो से इस कलह का अन्त कीजिए, अभी भी अवसर है और इस बार कृष्ण के दूत बनकर आने के कारण ऐसा अवसर है, जैसा इसके पूर्व कभी नही आया।

द्रोण—हाँ, महाराज, कृष्ण के सभा मे आने मे अब विलम्ब नहीं है। क्या ही अच्छा हो, यदि उनके आने के पूर्व ही हम एकमत मे पितामह के इस प्रस्ताव को स्वीकृत कर बिना किसी विवाद के उन्हे कह दे कि हम कलह का अन्त कर सन्धि के लिए प्रस्तुत है।

कृप—वरन् एक बात हमे और करनी चाहिए, सन्धि किस प्रकार हो, इसका भार भी कृष्ण पर ही छोड देना चाहिए।

अश्वत्थामा—हाँ, उनसे अधिक निष्पक्ष व्यक्ति का मिलना असम्भव है।

विकर्ण—सारा विश्व आज उन्हे पूज्य-दृष्टि से देखता है, वरन् वे भगवान् का अवतार माने जाते है।

दुर्योधन—अरे तू तो चुप रह, विकर्ण! तेरी वाचालता तो बढती ही जा रही है। जब देखो तब बोलने को प्रस्तुत! धर्म की व्याख्या करा लो। न्याय की विवेचना करा लो। तू जानता क्या है, रे? कभी धर्म पढा था? कभी मीमासा का अध्ययन किया था? सारा विश्व कृष्ण को पूज्य-दृष्टि से देखता है! वे भगवान् का अवतार माने जाते है! कौन उसे पूज्य-दृष्टि से देखता है? कौन मानता है उसे अवतार? न जिसके माता-पिता का कोई ठिकाना है, न कुल और वर्ण का, ससार मे कोई ऐसा नीच से नीच और बुरे से बुरा कर्म नही, जो वह न कर सके। गाये उसने चरायी, मामा को उसने मारा, युद्ध मे वह भागा, कहाँ तक उसके कुकर्मों को गिना जाए? न जाने कैसे कुछ लोग उसे श्रेष्ठ पुरुष समझने लगे है?

दु शासन—फिर उस श्रेष्ठता की वह रक्षा भी करे यह भी उससे ही होना। जिनके राजसूय यज्ञ मे उसकी अग्र पूजा हुई, उन्ही का दूत बनकर आ रहा है! और जिनमे हमारा झगडा, जिनका वह दूत, झगडे का निपटारा करने को उसी को नियुक्त कर दिया जाए! फिर पासो पर ही सारा विषय क्यो न छोड दिया जाए?

कर्ण—हाँ, .हाँ, यह प्रस्ताव तो सचमुच मे ही अद्भुत है। मै तो समझता हूँ कि ससार मे ऐसा विलक्षण प्रस्ताव बुद्धिमानो की समिति मे तो क्या, वज्र से वज्र मूर्खो की समिति मे भी न हुआ होगा।

[कृष्ण का विदुर और अनेक ऋषियो के साथ प्रवेश।]

भीष्म—(उठते हुए धृतराष्ट्र से) महाराज, कृष्ण पधार रहे है, आपको भी उठकर उनका स्वागत करना चाहिए।

[धृतराष्ट्र खडे हो जाते है। भीष्म उनका हाथ पकड़कर आगे बढ़ते है, शेष सब उनका अनुसरण करते है। कृष्ण धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण और कृप के चरणो में सिर झुकाते है, दुर्योधन, दु शासन, कर्ण और अश्वत्थामा को हृदय से लगाते है। विकर्ण उनके चरणो में सिर झुकाता है। ऋषियो के चरणो में सभी मस्तक झुकाते है। वे सबको आशीर्वाद देते है। सब यथास्थान बैठते है। कृष्ण, विदुर और ऋषि चौकियो पर।]

भीष्म—हस्तिनापुर पर आपने बडी कृपा की, वासुदेव।

कृष्ण—कृपा, पितामह? कर्तव्य पालन करने के प्रयत्न मे आप सदृश महान् विद्वान और कर्तव्यपरायण व्यक्ति को तो कृपा का स्थान न दिखना चाहिए।

धृतराष्ट्र—मार्ग मे कोई कष्ट तो नही हुआ, यदुराज?

कृष्ण—थोडा भी नही, महाराज, आपके राज्य की सीमा मे आने के पश्चात् तो इतना सुख मिला कि किसी भी यात्रा मे न मिला था। स्थान-स्थान पर मेरी सुविधाओ के लिए ऐसी अच्छी व्यवस्था थी कि क्या कहूँ। (दुर्योधन की ओर मुस्कराकर) इनके लिए तो मुझे युवराज को साधुवाद देना चाहिए।

दुर्योधन—कर्तव्यपालन के प्रयत्न मे आप सदृश महान् विद्वान् और कर्तव्यपरायण व्यक्ति को तो साधुवाद का स्थान न दिखना चाहिए।

कृष्ण—(अट्टहास कर) दुर्योधन से तो कृति का ही नहीं, शब्दो का प्रतिकार भी तत्काल प्राप्त होना है, होना ही चाहिए।

[सभा में अट्टहास । कुछ देर निस्तब्धता ।]

कृष्ण—मैं वृथा समय नष्ट नही करना चाहता, आप महानुभावो को मेरे आने का प्रयोजन तो ज्ञात हो ही गया होगा ?

दुर्योधन—हाँ, सुना है कि जिन पाडवो ने प्रतिज्ञाभग की है, उनकी ओर से आप सन्धि का प्रस्ताव लेकर पधारे है ।

कृष्ण—प्रतिज्ञा-भग ! मैं आपका आशय समझा नही, युवराज।

दुर्योधन—सब कुछ समझते हुए भी आप समझे नही ? कोई हानि नही, मैं स्पष्ट किये देता हूँ । तेरह वर्ष के वन एव अज्ञातवास के पूर्व प्रकट हो जाने पर पाडवो को वन और अज्ञातवास की द्वितीय आवृत्ति करनी चाहिए, न कि राज्य-प्राप्ति का प्रयास । वे समय के पूर्व प्रकट हो गये है, अत जो प्रस्ताव आप लाये है, उस पर विचार ही नही किया जा सकता ।

कृष्ण—तेरह वर्ष के पूर्व यदि वे प्रकट हो गये है तो उन्हे वन और अज्ञातवास की द्वितीय आवृत्ति अवश्य करनी चाहिए।

दुर्योधन—(कुछ प्रसन्नता से) यह मेरा ही नही प्रकाड पडितो का मत है।

कृष्ण—परन्तु कुछ प्रकाड पडितो का मत इसके विपरीत भी है ।

दुर्योधन—होगा।

कृष्ण—तब इस सम्बन्ध म अन्तिम निर्णय कैसे हो ?

[कुछ देर निस्तब्धता ।]

कृष्ण—हाँ, बताओ, दुर्योधन ।

दुर्योधन—कैसे हो सकता है ? मैं अपने पडितो का मत मानूँगा ।

कृष्ण—और पाडव अपने पडितो का ।

[कुछ देर निस्तब्धता ।]

कृष्ण—तो इस प्रकार तो विषय का निपटारा हो ही नहीं सकता । (कुछ रुककर) देखो, दुर्योधन, इस समय के सबसे बड़े पडित है भीष्म पितामह । (जल्दी से सभासदो की ओर देखकर) इसमें तो किसी का मत-भेद नहीं है ।

अधिकांश सभासद—(एक साथ) किसी का नहीं, किसी का नहीं।

कृष्ण—(जल्दी से) तो वे इस सम्बन्ध में जो निर्णय दे दें, वह सबको स्वीकृत होना चाहिए।

अधिकांश सभासद—(एक साथ) यह ठीक है, यह ठीक है।

भीष्म—पाडव अपना पूरा समय व्यतीत कर प्रकट हुए है, इसमे मुझे थोडा भी सन्देह नही है।

दुर्योधन—(जो अब तक बोलने का प्रयत्न करने पर भी संभाषण की त्वरा के कारण न बोल सका था, अब शीघ्रता से) परन्तु, पितामह, आप ज्योतिषी नही, और क्षमा कीजिए, यदि मै यह कहूँ कि पाडवो के प्रति अत्यधिक सहानुभूति के कारण आपका निर्णय भी निष्पक्ष नही कहा जा सकता।

कृष्ण—(गम्भीरता से) दुर्योधन, जिन पितामह ने द्यूत के दिन भी पाचाली के प्रश्नो के उत्तर मे अपनी निष्पक्षता को थोडी सी आँच नही आने दी थी, जो पितामह द्रौपदी के वस्त्र-हरण के समय भी मौन बैठे रहे थे, उन पर तुम पक्षपात का दोषारोपण नही कर सकते। पाडवो से सहानुभूति किसे नही है ? जो कष्ट पाता है, उनसे सहानुभूति होना एक स्वाभाविक बात है, पर उस सहानुभूति के कारण वे अधर्म न करेगे, कदापि नही।

दुर्योधन—(दृढता से) परन्तु मुझे पितामह का निर्णय मान्य नही है।

[एक विलक्षण प्रकार की निस्तब्धता।]

कृष्ण—ऐसा ? तो   तो, युवराज, आप युद्ध पर तुले ही हुए है। मैने आपसे कहा हूँ इस समय भी सन्धि सम्भव है कदाचित् ऐसी सन्धि भी हो सकती है, जो आपके लिए ही लाभप्रद हो। यो तो धर्म के अनुसार पाडवो का पूरे राज्य पर अधिकार है

दुर्योधन—(बीच ही में) कौन कहता है ? धर्म के अनुसार राज्य कुरवश का है, वश मे जो ज्येष्ठ है, उसका है। पिताजी महाराज पाडु से ज्येष्ठ है, और मै हूँ उनका पुत्र

कृष्ण—(बीच ही में) किन्तु, दुर्योधन, वे राज्य महाराज पाडु को दे चुके थे।

दुर्योधन—कदापि नही।

कृष्ण—(भीष्म और विदुर की ओर देखकर) कहिए, पितामह, और विद्वद्वर।

भीष्म—हाँ, वे दे चुके थे।

विदुर—और इसलिए कि देख न सकने के कारण राजकाज चला न सकते थे।

दुर्योधन—परन्तु अब तो मैं देखने वाला जन्म ले चुका हूँ।

कृष्ण—दी हुई वस्तु इस प्रकार लौटायी नही जा सकती, और फिर आज यह प्रश्न क्यो उठा है, राजसूय यज्ञ के समय क्यो नही उठा ?

दुर्योधन—मेरी उदारता के कारण।

कृष्ण—ऐसा ? तो तो, दुर्योधन, मैं तुमसे पुन वही उदारता दिखाने की प्रार्थना करता हूं। और फिर इस समय कुरुराज के अधिकार मे जो राज्य है वह तो पाडवो की राजसूय यज्ञ के समय की दिग्विजय के कारण

दुर्योधन—कदापि नही, कर्ण की दिग्विजय के कारण। यह दिग्विजय राजसूय यज्ञ की दिग्विजय के पश्चात् हुई है।

कृष्ण—पश्चात् हुई होगी, पर राजसूय यज्ञ की दिग्विजय के प्रभाव से इस विजय को सहायता मिली है, इसे तो अस्वीकार नहीं किया जा सकता। फिर इस समय जरासन्ध के सदृश पराक्रमी राजा विजय करने के लिए नहीं रह गये थे। पर मै इस विवाद मे नहीं पड़ना चाहता। मै चाहता हूं तुम्हारी उदारता। पूरा नहीं तो आधा राज्य उन्हें दो। आधा भी देने की इच्छा न हो तो उससे भी कम सही। (कुछ ठहरकर) तथा तथा मैं तुम्हीं पर छोड़ता हूँ कि उन्हें क्या दिया जाना चाहिए ?

[कृष्ण के इस प्रकार सारा विषय दुर्योधन पर छोड देने के कारण सभा में एक विचित्र प्रकार की निस्तब्धता छा जाती है। सबकी दृष्टि दुर्योधन पर केन्द्रित हो जाती है। कर्ण भी अत्यन्त उत्सुकता भरी दृष्टि से दुर्योधन की ओर देखता है। कुछ देर निस्तब्धता।]

भीष्म—दुर्योधन, इनसे अधिक उदार प्रस्ताव ससार मे सम्भव नही। जिन कृष्ण पर तुम सन्धि का भार सौपने को प्रस्तुत नही थे, वे ही कृष्ण पाडवो को क्या दिया जाए, यह तुम पर छोडने को तैयार है।

द्रोण—हॉ, इसमे सन्देह नही, कि इससे उदार प्रस्ताव सम्भव नही हो सकता है।

विदुर—कभी नही।

कृप—कदापि नही।

अश्वत्थामा—(दुर्योधन की ओर कातर दृष्टि से देखते हुए) राजन् राजन्।

विकर्ण—(उसी प्रकार की दृष्टि से दुर्योधन की ओर देखते हुए) आर्य आर्य।

[दुर्योधन फिर भी कुछ नहीं बोलता। कुछ देर निस्तब्धता।]

कृष्ण—(दुर्योधन की ओर देखते हुए) युवराज, सोच लो, अच्छी प्रकार सोच विचार कर उत्तर दो और यह न समझना कि मै केवल शब्दो मे यह बात कह रहा हूँ। (ऊँचे और दृढतापूर्ण स्वर में) यदि पाँच पाडवो को तुम पांच गांव भी दोगे तो भी मै वचन देता हूँ कि तुम्हारे प्रस्ताव को उनसे सहर्ष स्वीकृत करा दूंगा।

अधिकांश—(एक साथ) धन्य है, धन्य है।

धृतराष्ट्र—(गला साफ करते हुए) बेटा सुयोधन, देख

दुर्योधन—(धृतराष्ट्र का स्वर सुनकर जल्दी ही बीच में) तात, आप आप इस झगडे मे मत पडिए। (दृढतापूर्वक कृष्ण से) कृष्ण, पांच गांव तो दूर की बात है मै सुई की नोक के बराबर पृथ्वी भी पाडवो

को देने के लिए प्रस्तुत नही, वे वन और अज्ञातवास की पहिले पुनरावृत्ति करे।

[सभा मे फिर सन्नाटा छा जाता है।]

कृष्ण—(कुछ देर पश्चात्) दुर्योधन, मै एक बार तुमसे तुम्हारे कथन पर पुनः विचार करने के लिए कहता हू। विज्ञ व्यक्ति अपने सारे कार्य धर्म, अर्थ और काम की ओर दृष्टि रखकर ही करते है। इन तीनो मे से पृथक्-पृथक् वस्तु की प्राप्ति की इच्छा हो तो उत्तम धर्म का पालन करते है, मध्यम अर्थ को प्राप्त और निकृष्ट काम की आराधना। जो धर्म को छोडकर अर्थ और काम को चाहते है, वे विनष्ट हो जाते है। धर्म के अनुसरण से ही अर्थ और काम प्राप्त होता है। पडितो ने धर्म को ही त्रिवर्ग की प्राप्ति का उपाय माना है। अर्थ और काम के वशीभूत हो तुम युद्ध के लिए पाडवो को विवश न करो। जिस भीम को मै इस समय एक गांव से सन्तुष्ट करना चाहता हू उसे द्यूत के दिन की अपनी घोषणाओ को पूर्ण करने का अवसर न दो। जिस अर्जुन ने अपने ज्येष्ठ भ्राता का अनुसरण करने के लिए भीम सदृश भाई को भी शान्त रखने का सदा प्रयत्न किया, उसे अपना गाडीव उठाने के लिए बाध्य न करो। युवराज, युद्ध कोई अच्छी वस्तु नही है। इस युद्ध मे विजेता की दशा पराजित से भी बुरी होती है। जो युद्ध भीषण से भीषण परिणामो को उत्पन्न करता है, क्या उसे निमन्त्रित कर रहे हो? अरे, युद्ध के अवसर पर ही मार-काट, रक्तपात नही होता, पर उसके पश्चात् भी न जाने कितने कुलो मे सदा शोकाग्नि प्रज्वलित रहती है। कितनी स्त्रियां वैधव्य का दारुण दुःख भोगती है, [illegible] माताएं पुत्र-शोक का महान [illegible]! [illegible] है। समाज मे जो अनाचार फैलता है, वह पीढियो तक चलता [illegible] और फिर महामारियां, दुष्काल, जाने क्या-क्या [illegible] है। क्या [illegible] कुरुवन के नाश पर कटिबद्ध हो? [illegible] क्या मनुष्य मात्र के [illegible] कारण बन रहे हो? कुरुवश की [illegible]

के विग्रह मे ससार का अनिष्ट है। कुरुवश को जो महत्त्व प्राप्त है, उसे विश्व के कल्याण के लिए उपयोग मे आने दो, नाश के लिए नही।

दुर्योधन—तो अब आप हमे भय दिखा रहे है।

कृष्ण—मै तुम्हे भय नही दिखा रहा हूँ, तुम्हे और तुम्हारे साथ सारी सभा को युद्ध के परिणामो का स्मरण दिला रहा हूँ। मै कुरुवश के वृद्धो से धर्म के नाम पर, न्याय के नाम पर, मनुष्यता के नाम पर, कहना चाहता हूँ कि वे इस महाभीषण काड को रोके, रोकने की प्राणपण से चेष्टा करे। यदि यह युद्ध न रुका तो इसका सारा उत्तरदायित्व, इस युद्ध के परिणामो का सारा पाप, इन वृद्धो के सिर होगा।

[कोई कुछ नहीं बोलता। कुछ देर एक विचित्र प्रकार निस्तब्धता।]

कृष्ण—(धृतराष्ट्र से गरजकर) महाराज, आपका जो पुत्र पाडवो को सुई की नोक के बराबर पृथ्वी भी देने को प्रस्तुत नही, जो धर्म, न्याय, सारी मर्यादाओ का उल्लघन कर इस महाभीषण सहार को आमन्त्रित कर रहा है, उस पुत्र को आपको त्याज्य पुत्र मान देश से निकाल देना चाहिए।

[कृष्ण की गर्जना से सारा सभाभवन काँप सा उठता है।]

दुर्योधन—(अत्यन्त क्रोध से खड़े होकर) तो अन्त मे तुम अपने सच्चे स्वरूप मे प्रकट हो गये। तुम पिता पुत्र मे झगडा कराना चाहते हो! देख लिया मुझे देश निष्कासन की सम्मति देने वाले को! तुम्हारा स्थान होगा अब हस्तिनापुर के कारागृह मे।

[कृष्ण का अट्टहास। सभा "धिक् धिक्" शब्दो से गूंज उठती है।]

दुर्योधन—दु शासन, कर्ण, बन्दी करो इस यादव को।

[दु शासन और कर्ण खडे होते है, कर्ण कुछ सकुचाते हुए। परन्तु उसी समय दुर्योधन, दु शासन और कर्ण को कृष्ण अगणित रूपो में दिख पडते है। तीनो मति-भ्रम से होकर स्तब्ध से हो जाते है।]

दु शासन—(भर्राये हुए स्वर से) यह क्या ... क्या मुझे दिख रहा है? ... क्या ... कई कृष्ण

कर्ण—(दुःशासन के सदृश स्वर में) हाँ, किस [illegible] किस कारण से वन्दी किया जाए।

[अन्य सभासद् कुछ न समझ, पागलों के सदृश चारों ओर देखते हुए दुर्योधन, दुःशासन और कर्ण की ओर अत्यन्त आश्चर्य से देखते हैं।]

लघु यवनिका

चौथा दृश्य

स्थान—हस्तिनापुर में कर्ण के भवन का उद्यान

समय—सन्ध्या

[रोहिणी इधर-उधर घूमकर गा रही है।]

गान

कू कुहू कि गा तू, आली!

मधु वेला मधुर मिलन की,

कू कुहू कि गा तू, आली।

सन्ध्या वह डूब चली है

रजनी के रंग में घुल-मिल,

उड़ चली नीड़ को आन

मेरी बगिया की बुलबुल,

मैं साथ लिए आई हूँ,

आज मेरे वनमाली।

ढालेगा सुधा सुधाकर
ज्योत्स्ना अंजलि में भर-भर,
पुलकित हो पात्र भरेंगे
ये चतुर चपल चंचल कर,
प्रिय अधरों को चूमेगी

मेरी मरकत की प्याली।

रजनी स्वप्नों में सजकर
अंचल में मोती भर-भर,
शृंगार करेगी मेरा
चिर मुझे सुहागिन कहकर,
प्रिय अपलक तव देखेंगे,

मैं नाचूं दे दे ताली।

[कर्ण का प्रवेश। कर्ण को देख रोहिणी उनके स्वागत को बढ़ती है।]

रोहिणी—कहिए, नाथ सभा में क्या हुआ ?

कर्ण—(दीर्घ निश्वास छोडते हुए) जो सोचा था, प्रिये।

[दोनों चौकियों पर बैठते हैं।]

रोहिणी—तो सन्धि की कोई आशा नहीं ?

कर्ण—कभी थी ही नहीं, परन्तु, प्रिये, कृष्ण अद्भुत व्यक्ति हैं। अब तो मेरा भी विश्वास हो गया कि ऐसा महान् व्यक्ति कभी भी संसार में नहीं जन्मा।

रोहिणी—क्यों, सभा में कोई विशेष बात हुई ?

कर्ण—एक से बढ़कर एक। कृष्ण के जैसे भाषण हुए, कदाचित् ही कभी वैसे भाषण हुए हों। और एक बात तो ऐसी हुई, जिसकी सत्यता पर न देखने वाले को कभी विश्वास ही नहीं हो सकता।

रोहिणी—क्या, प्राणेश ?

कर्ण—सुयोधन ने दु:शासन को और मुझे कृष्ण को बन्दी करने की आज्ञा दी। उस समय सुयोधन, दु:शासन और मैंने कृष्ण के वहाँ अगणित रूप देखे। वे अगणित रूप हम तीनो को ही दिखे, शेष सभासदो से जान पडा, उन्हे नही।

रोहिणी—(अत्यन्त आश्चर्य से) ऐसा ?

कर्ण—हाँ, कृष्ण पूर्ण योगेश्वर है, इसमे सन्देह नही हो सकता, प्रिये। जानती हो सभा मे आज मेरे मन की क्या दशा थी ?

रोहिणी—क्या ?

कर्ण—मै पूर्ण रूप से कृष्ण के साथ था। उनकी एक-एक बात का हृदय समर्थन कर रहा था।

रोहिणी—और आपने भाषण मे भी उन्ही का समर्थन किया ?

कर्ण—आह! यह ... यही तो मै न कर सका, किन्तु उनके विरोध मे भी एक शब्द मेरे मुख से न निकला।

[प्रतिहारी का प्रवेश।]

प्रतिहारी—(अभिवादन कर) श्रीमान्, यदुराज पधार रहे है।

कर्ण—(शीघ्रता से खडे होते हुए) कृष्ण ... कृष्ण पधार रहे है! कृष्ण पधार रहे है!

[कर्ण जिस ओर से प्रतिहारी आया था, उस ओर जाता है। प्रतिहारी उसके पीछे-पीछे। रोहिणी दूसरी ओर से जाती है। कर्ण कृष्ण के साथ लौट आता है। दोनो चौकियो की ओर बढते है।]

कर्ण—इस गृह और उद्यान [illegible] आपने पवित्र कर दिया, यदुराज, [illegible]।

[दोनो चौकियो पर बैठ जाते है।]

कृष्ण—तुम्हारे गृह और उद्यान [illegible]

थोडे ही होगा, अंगराज, मैं स्वयं [illegible]

[कर्ण का सिर झुक जाता है। वह कुछ भी नही बोलता। कृष्ण उसकी ओर देखते रहते है। कुछ देर निस्तब्धता।]

कृष्ण—अगराज, तुम जानते हो, तुम सूत-पुत्र नही, कुन्ती के पुत्र हो ?

कर्ण—(दीर्घ निश्वास लेकर धीरे-धीरे सिर उठाते हुए) पर यह जानने से अब मुझे लाभ क्या है, वासुदेव ?

कृष्ण—लाभ ? लाभ ही लाभ है, हानि क्या है ? मै प्रस्ताव करने आया हूँ कि तुम्हारा जो स्थान है, तुम उसे प्राप्त करो। शास्त्र के अनुसार कानीन भी उसी का पुत्र माना जाता है, जिससे कन्या का विवाह होता है। अत तुम पाडु के पुत्र माने जाओगे। ज्येष्ठ होने के कारण राज्याभिषेक तुम्हारा ही होगा। युधिष्ठिर तुम पर व्यजन एव चामर डुलायेगे। भीम तुम्हारे छत्र-वाहक होगे। अर्जुन तुम्हारा रथ चलाएँगे। अभिमन्यु तुम्हारे चरणो मे बैठेगा। नकुल, सहदेव और पाडवो के सभी आत्मीय तुम्हारे अनुयायी होकर तुम्हारी सेवा करेगे। मै अपने हाथ से तुम्हारा राज्य-तिलक करूँगा। और उस समय तुम्हारे अविरत जयघोष से तुम्हारी माता कुन्ती को कितना आनन्द होगा !

कर्ण—परन्तु परन्तु, यदुराज

कृष्ण—(बीच ही में) और देखो, छठवे पाडव होने के कारण तुम द्रौपदी के छठवे पति होगे।

[कर्ण चौंक सा पडता है, परन्तु तत्काल अपने को सँभालने का प्रयत्न करता है। उसका यह अन्तरद्वन्द उसके मुख से स्पष्ट झलकता है। कृष्ण खोज भरी दृष्टि से कर्ण की ओर देखते है। कुछ देर निस्तब्धता।]

कर्ण—(अपने आपको विजय करने में बहुत दूर तक सफल होते हुए, जो उसके मुख और स्वर से जान पडता है।) यदुराज, आप मुझे लोभ मे डालने पधारे है या क्रय करने ?

कृष्ण—मै ठीक समय तुम्हे तुम्हारा उचित स्थान देने के लिए आया हूँ।

कर्ण—(दीर्घ निश्वास छोड़कर) ठीक समय ? यह पश्चात् ठीक समय हो रहा है, वासुदेव ?

कृष्ण—इसके लिए युद्ध से पूर्व का समय ठीक नहीं है, तो क्या युद्ध के पश्चात् का समय ठीक होता ?

कर्ण—(जिसने सब अपने को पूर्ण रूप से विजय कर लिया है) निर्जीव मंजूषा में बन्द कर मुझे निर्जीव बनाने के पश्चात् जीवित पाने की माता कुन्ती कैसे आशा करती है ?

कृष्ण—कर्ण, तुम अन्याय कर रहे हो। समाज के उस प्रकार के संगठन में किसी कन्या से और आशा ही क्या की जा सकती थी ?

कर्ण—अब क्या सामाजिक संगठन परिवर्तित हो गया है, यदुराज ? जिस अधिरथ ने मुझे बनाया, जिस राधा ने माता की ममता से मुझे पाल-पोसकर बड़ा किया, उन्हें मैं छोड़ दूँ ? सूत भार्या का ही मुझ पर प्रेम नहीं है, मेरा भी उस पर उतना ही प्रेम है। उसे मैं ठुकरा दूँ ? उस सूत-पत्नी से मेरी सन्तति है, उन पर मेरा जो स्नेह है, उसे भी मैं त्याग दूँ ? और ... और, वासुदेव, सुयोधन ... सुयोधन को भी मैं कैसे छोड़ दूँ ? उसने मुझे राज्य दिया, सारे कार्य मेरी सम्मति से किए, पाण्डवों से यह विग्रह युद्ध की यह तैयारी उसने मेरे भरोसे पर की है। वह जानता है कि रथ-युद्ध में अर्जुन को यदि कोई जीत सकता है तो मैं। सुयोधन के उपकारों का बदला देने का [illegible] अवसर पर मैं उसे [illegible] ? (अत्यन्त दृढ़ता से) [illegible] से भयानक भय भी मुझे सुयोधन के प्रति कृतघ्न नहीं बना सकता।

कृष्ण—और, तुम राज्य नहीं चाहते, द्रौपदी [illegible] नहीं [illegible], [illegible] किन्तु [illegible] जाता है उसे तुम्हारा [illegible] ?

कर्ण—[illegible] का [illegible] नहीं [illegible] है कि मैंने [illegible]

है। मेरा अर्जुन से युद्ध न करने का फल यह अवश्य होगा कि उसकी और मेरी दोनो की ही अकीर्ति हो जाएगी।

कृष्ण—और युद्ध का परिणाम जानते हो ? मै भविष्यवाणी भी कर सकता हूँ।

कर्ण—आप त्रिकालज्ञ है, तथा सर्व प्रकार से समर्थ, योगेश्वर, यह अब मुझ से छिपा नही है। (और भी दृढता से) पर युद्ध का परिणाम बताकर भी आप मेरे मन मे मोह उत्पन्न न कर सकेगे। मृत्यु को सन्मुख देखकर भी दुर्योधन के पक्ष मे मैं उसी प्रकार युद्ध करूँगा, जिस प्रकार विजय को देखकर करता।

कृष्ण—अपने एव कौरवो के नाश को अवश्यभावी मानकर भी तुम टेक पर अडे हो, कर्ण ?

कर्ण—(मुस्करा कर) विजय को सम्मुख देखकर टेक पर अडे रहने की अपेक्षा पराजय को अवश्यभावी मानकर टेक पर अडे रहना क्या अधिक गौरवशाली नही है, यदुराज ?

कृष्ण—(उठकर कर्ण की पीठ को थपथपाते हुए) तव   तव तो अव और अधिक कहने का कदाचित् प्रयोजन ही नही रह जाता।

कर्ण—(जो कृष्ण के साथ ही उठ गया था) इतने शीघ्र मुझे इस सहवास से वचित कर रहे है, वासुदेव ?

कृष्ण—मै तो सदा ही यह सहवास रखने के लिए आया था, पर तुमने मेरा कहना ही नही माना, अव मै तत्काल विराट नगर लौट रहा हूँ।

कर्ण—मुझे खेद, महान् खेद है, यदुराज, कि आपने इतनी कृपा कर यहाँ पधारने का कष्ट उठाया, इतनी वाते कही, पर इतने पर भी मै आपकी आज्ञा न मान सका, परन्तु इतनी धृष्टता के पश्चात् भी एक प्रार्थना करता हूँ।

कृष्ण—कहो।

कर्ण—जिन्हे आपको स्वर्ग भेजना है, उन्हे स्वर्ग भिजवाइए, जिन्हे राज्य दिलाना है, उन्हे राज्य दिलाइए, किन्तु मेरे जन्म का वृत्त गोपनीय ही रहे। इसके प्रकट होने पर व्यर्थ कुन्ती की वृथा ही अपकीर्ति होगी। अर्जुन इसे जान गया तो या तो वह मुझ से युद्ध ही न करेगा और यदि किया भी तो उसमे निर्बलता आ जाएगी। युधिष्ठिर को यह बात ज्ञात हो गई तो वे युद्ध छोड अपना अधिकार ही मेरे अर्पण कर देंगे। यदि उन्होंने ऐसा किया तो उस अधिकार को मै तो तत्काल सुयोधन के चरणों मे अर्पण कर दूंगा।

कृष्ण—कर्ण, इतने नीच, इतने पतित समझे जाने वाले, कर्ण [illegible] मे तुम कितने उच्च [illegible] कैसे उदात्त हो!

[कृष्ण कर्ण को हृदय से लगा लेते हैं।]

लघु यवनिका

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—कर्ण के भवन का कक्ष

समय—रात्रि

कर्ण—ओह! [illegible] कितना [illegible] कितना [illegible] प्रलोभन [illegible] के निम्नतम वर्ग से [illegible] आर्यों के उच्चतम वर्ग मे प्रवेश! [illegible] का साम्राज्य! उस तपस्विनी [illegible] की प्राप्ति! परन्तु [illegible] फिर भी [illegible] नहीं। [illegible] पिंजरे का निर्द्वन्द्व पक्षी [illegible] सकता है? [illegible] कितनी कठिनाई, हा, कितनी कठिनाई हुई उस [illegible]

करने मे ? अधिरथ के उपकार, राधा की ममता, . रोहिणी का प्रेम, सन्तान का स्नेह, सुयोधन के प्रति कृतघ्नता, क्या-क्या, हाँ, क्या-क्या स्मरण करना पडा। तथा तथा किस कठिनाई से वह प्रथम वाक्य मुख से निकल सका—"यदुराज, आप मुझे लोभ में डालने पधारे है या भय करने ?" किन्तु किन्तु उस प्रथम वाक्य के मुख से निकलने के पश्चात् (बैठकर कुछ रुककर) हाँ, उसके पश्चात्, आगे कोई कठिनाई नहीं हुई। विस्फोट हो जाने पर ज्वालामुखी का अग्निरस जिस प्रकार वह चलता है, फिर तो उसी उसी प्रकार आगे का सम्भाषण चलता रहा। पर पर पर विस्फोट तक ? (फिर खड़े होकर इधर-उधर घूमते हुए) विस्फोट तक तो जैसा सघर्ष हुआ उन उन कुछ क्षणो के सघर्ष के सदृश सघर्ष जीवन मे कभी कभी भी न हुआ था। (खडे होकर) होता कैसे ? इतनी वडी वात इसके इसके पूर्व कभी आयी थी ? (फिर टहलते हुए) कवच-कुडल के दान की दूसरी वात थी। उस सम्बन्ध मे तो ब्राह्मण को मुंह माँगी वस्तु देने का सकल्प, ध्रुव नक्षत्र के सदृश सम्मुख था, परन्तु यहाँ . यहाँ सुयोधन को दिये हुए वचन-भग के लिए एक नही अगणित, . हाँ, अगणित युक्तियाँ दी जा सकती थी—उसका अन्यायी पक्ष, उसका पाडवो को पाँच गाँव देना तक अस्वीकृत करना, . एव एव मेरे जन्म के रहस्य का उद्घाटन! वचन सूत-पुत्र ने दिया था, कुन्ती पुत्र दे ही कैसे सकता था ? (खडे होकर सामने की ओर देखते हुए) हाँ, यह अन्तिम युक्ति ही सबसे बडी युक्ति थी। (फिर टहलते हुए) पर ठीक हो गया, मजूषा से वेष्टित हो तो क्या हुआ, यही यही ठीक मार्ग था और और अब शेष रहे हुए जीवन का मार्ग तो सीधा नितान्त सीधा है।

[कर्ण सिर नीचा कर इधर-उधर घूमता रहता है। रोहिणी का प्रवेश।]

रोहिणी—(गद्गद् स्वर से) उस मंजूषा का रहस्य आज समझा प्राणनाथ ।

कर्ण—(खड़े होकर) अच्छा, तुमने मेरी और कृष्ण की बातें सुन ली ?

रोहिणी—सारे सम्भाषण में मैं एक वृक्ष की ओट में खड़ी रही। आपकी तो सभी बातों के सुनने और जानने का मुझे अधिकार है न ? कोई हानि हुई ?

कर्ण—थोड़ी भी नहीं, परन्तु यह रहस्य तुम्हीं तक रहे, प्रिये ।

रोहिणी—इस सम्बन्ध में आपको निश्चिन्त रहने के लिए कहने की आवश्यकता है ?

कर्ण—नहीं, पर जता तो देना चाहिए न ?

रोहिणी—कितने ... कितने महान् हैं मेरे पति ! कितना-कितना स्नेह है आपका हम सब पर ! (एकाएक चिन्ताकुल स्वर से) किन्तु अब युद्ध ... युद्ध का परिणाम क्या होगा ?

[प्रतिहारी का प्रवेश ।]

प्रतिहारी—राजमाता कुन्ती पधार रही हैं, श्रीमान् ।

[कर्ण धीरे-धीरे जिस द्वार से प्रतिहारी आया था, उस द्वार की ओर बढ़ता है । दूसरे द्वार से रोहिणी बाहर चली जाती है । कुन्ती का प्रवेश । प्रतिहारी भी बाहर जाता है ।]

कर्ण—(सिर झुकाकर) यह सूत राधेय राजमाता कुन्ती का अभिवादन करता है ।

कुन्ती—(आँखों में आँसू भर दोनों हाथ उठा आशीर्वाद देते हुए) अब युद्ध आरम्भ के पश्चात् भी तुम मेरा इस प्रकार अभिवादन करते हो !

कर्ण—बैठिए, आज्ञा दीजिए ?

[दोनों चौकियों पर बैठ जाते हैं ।]

कुन्ती—हाँ, सत्य धर्म का आग्रह [illegible] धर्म उसका पालन करता है ।

कर्ण—(व्यग से मुस्कराकर) पुत्र के धर्म का स्मरण कराने वाली माता ने यदि माता के धर्म का पालन किया होता, तो ही पुत्र-धर्म की व्याख्या उसके मुख से शोभाप्रद होती।

कुन्ती—तुमने ठीक कहा, कर्ण, पर यह तो मानोगे ही कि कुपुत्र बहुत होने पर भी कुमाता कदाचित ही होती है। यदि मै कुमाता सिद्ध हुई हूँ तो भी तुमने सुपुत्र की आशा करना तुम्हारी महानता पर ही तो विश्वास करना हुआ। (आँसू बहाते हुए) फिर विलम्ब से भी यदि धर्म का पालन किया जाए तो भी वह धर्म का पालन ही रहता है, उल्लघन तो नही।

कर्ण—इस समय भी, राजमाता, आप अपने जननी-धर्म का पालन करने नही आयी, पर अपने स्वार्थसिद्धि के लिए पधारी है। यदि आप सच्चे माता-धर्म का पालन करना चाहती तो आज भी जिस कार्य के लिए आयी है उसके लिए न पधारती। आप इसीलिए आयी है न, कि मै कौरवों का साथ छोडकर पाडव-पक्ष में आ जाऊँ?

कुन्ती—भाइयो को साथ रहने का आदेश क्या माता के धर्म का पालन नही है?

कर्ण—जिन परिस्थिति मे आप यह आदेश करने आयी है, उस परि-स्थिति मे यह धर्म न होकर घोर अधर्म है। मेरे प्रति आपने जिस माता-धर्म का पालन किया है, उसे मुझ से कही अधिक आप जानती है। कम से कम इस समय आप अपने यथार्थ धर्म का पालन करे, यही मेरा अनुरोध है। आज यदि मै आपकी आज्ञा मान पाडवो के पक्ष मे आ जाऊँ तो ससार मेरी और पाडवो की दोनो की निन्दा करेगा। कोई यह मानेगा कि मै यथार्थ मे पाडवो का अग्रज हूँ? मुझे कृतघ्न ही न कहा जाएगा वरन् कायर और लोभी भी। पाडव, विशेषकर अर्जुन, तो कायरो का शिरोमणि समझा जाएगा।

[कुन्ती बोलने का प्रयत्न करती है।]

कर्ण—(बीच ही में) सुन लीजिए पहिले मेरी पूरी बात। आपकी आज्ञा, अनुनय विनय सब निरर्थक है। मेरा निर्णय अटल और अचल है। मैं सुयोधन का साथ छोड़ने को कभी भी प्रस्तुत नहीं। मुझ पर अगणित उपकार करने वाले जो सुयोधन आज मुझे नौका बनाकर रण सागर तरना चाहते हैं उन्हें बिना पार उतारे मैं बीच ही में नहीं छोड़ सकता। जो मेरे शरण हैं उन्हें मैं मरण नहीं दे सकता। और यदि वे डूबने ही वाले हैं, मरने ही वाले हैं, तो उनके साथ मैं भी डूबूँगा तथा मरूँगा। परन्तु आप यहाँ पधारी हैं तो आपको रिक्त करों न जाने दूँगा। आपकी भेंट अभी प्रस्तुत करता हूँ।

[कर्ण का प्रस्थान। कुन्ती उठकर अत्यधिक उद्विग्नता से इधर-उधर घूमने लगती है। कर्ण का शीघ्र मंजूषा लिये हुए प्रवेश। कर्ण को मंजूषा लिये हुए देख कुन्ती रो पड़ती है।]

कर्ण—माता, यह मंजूषा आपकी सच्ची सन्तान है। मुझे नहीं, आप अपनी सच्ची सन्तान को लेकर पधारें, (कुछ रुककर) परन्तु क्योंकि आप मेरे घर पधारी हैं अतः इस भेंट को देने के अतिरिक्त मेरा और भी कुछ कर्तव्य है। चलते चलते आपको थोड़ा निश्चिन्त भी कर देता हूँ। मैं आपके उन पुत्रों को न मारूँगा, जो मेरे समान बलवान नहीं। आपके चार पुत्र मेरे द्वारा अवध्य रहेंगे, यदि एक अर्जुन या मैं मारा गया तो मेरा उद्देश्य पूर्ण हो जायगा।

[कर्ण मंजूषा कुन्ती को देने के लिए हाथ बढ़ाता है, परन्तु कुन्ती मूर्ति की सदृश खड़ी रहती है।]

यवनिका

पांचवां अंक

पहिला दृश्य

स्थान—हस्तिनापुर मे कुन्ती का कक्ष

समय—सध्या

[कुन्ती अत्यन्त उद्विग्नता से इधर-उधर घूमती हुई गा रही है। बार-बार द्वार की ओर देखती है, जिससे जान पड़ता है कि किसी की प्रतीक्षा कर रही है।]

गान

मरण, करता सुन्दर शृगार।
पाप पुण्य स्वागत को प्रस्तुत, खोल अभय के द्वार।
यौवन ले शैशव की निधियाँ,
और जरा यौवन की सुधियाँ,
प्राण पथिक निज पथ पर चलता सुगम सँभाले भार।
मीत चलेरी दीप, प्रज्वलित,
मिलन बने गिरि, प्राण प्रफुल्लित,
ज्योति जगत मे भीड हो रही, सलभो का त्यौहार।
मधुर मृदगो के बोलो पर
झूम-झूम मृग आते सत्वर,
हा! जग की क्रीडा मे होना, प्राणो का व्यापार।

[विदुर का प्रवेश। विदुर कुन्ती की ओर बढते है।]

रचा, परन्तु कर्तव्य के सामने वे उसे भी इस प्रकार भूल सकते हैं, जैसे वैसी बात कभी हुई ही न थी। कर्तव्य का सच्चा पालन निष्पक्ष व्यक्ति ही कर सकता है। निष्पक्ष होकर उन्होंने युद्ध रोकने का प्रयत्न किया, और जब युद्ध न रुका, तब युद्ध में वे किस ओर रहे, इसका भी निर्णय उन्हें इस समय की प्रथा के अनुसार निष्पक्ष होकर ही करना पड़ा। (कुछ रुककर) और एक बात जानती हो?

कुन्ती—कौनसी?

विदुर—कृष्ण की सेना कौरवों की ओर से लड़ेगी।

कुन्ती—(आश्चर्य से) अच्छा! (कुछ रुककर) पर जो चाहे सो कौरवों की ओर से लड़े, भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, और ... और वसुषेण ... वसुषेण भी कौरवों की ओर से लड़ रहे हैं, इतने ... इतने पर भी मुझे विश्वास है, विदुर, कि युद्ध न करने पर भी, जिस पक्ष में वासुदेव होंगे वही पक्ष विजयी होगा।

विदुर—इसमें मुझे भी सन्देह नहीं है, देवि।

[कुछ देर निस्तब्धता।]

विदुर—(जैसे कुछ स्मरण आ गया हो) हाँ, एक बात तो कहना ही भूल गया।

कुन्ती—कहिए।

विदुर—कर्ण और पितामह का झगड़ा बढ़ता ही जा रहा था, वह आज इतना बढ़ गया कि पितामह के जीवित रहते कर्ण युद्ध ही न करेगा, ऐसी उसने प्रतिज्ञा की है।

कुन्ती—(प्रसन्नता से) ऐसा! तब ... तब तो विजय के चिह्न अभी से दीख पड़ रहे हैं।

विदुर—अन्त में न्याय और धर्म की विजय तो होनी ही है।

लघु यवनिका

युधिष्ठिर—अर्जुन, शीघ्रता क्यो करते हो ? किस विषय मे क्या करना चाहिए, इसे योगेश्वर कृष्ण से कौन अधिक जानता है ? भीष्मपितामह सदृश योद्धा को विना इनकी कृपा के हम धराशायी कर सकते थे ?

भीम—हाँ, हाँ, हमे वासुदेव की सम्मति के विरुद्ध तिलमात्र भी इधर-उधर नही हिलना है।

नकुल—और न कुछ करना।

सहदेव—और न कुछ सोचना।

अर्जुन—कृष्ण की सम्मति के विना कुछ करने को मै थोडे ही कहता हूँ, परन्तु पितामह के पतन के पश्चात् ही वसुषेण ने शस्त्र उठाये हैं और कुछ ही समय मे उसने हमारी कितनी सेना, कितने वीरो का सहार कर डाला ! इतना नाश पितामह के सेनापति रहते हुए भी नही हुआ था !

कृष्ण—(अट्टहास कर) तभी तो मैं कहता हूँ कि वह इस समय का सर्वश्रेष्ठ वीर है, इसमे मुझे थोडा भी सन्देह नही।

अर्जुन—(कुछ लज्जित होते हुए) किन्तु मैं उसका वध कर सकता हूँ, कृष्ण, इसमे मुझे थोडा भी सन्देह नही।

कृष्ण—तुम्ही उसका वध करोगे, और कोई नही कर सकता। पर वह अवसर अभी नही आया है।

अर्जुन—न जाने वह अवसर कव आएगा। उस अवसर के आने तक हमारी सेना और योद्धाओ मे से कोई वचेगा भी ?

कृष्ण—वह अवसर शीघ्र से शीघ्र कैसे आये, यही मै आज सोचता रहा। बहुत कुछ सोचने-विचारने के पश्चात् मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि तुम्हारे और कर्ण के युद्ध के पूर्व कर्ण-घटोत्कच युद्ध आवश्यक है।

अर्जुन—(आश्चर्य से) कर्ण-घटोत्कच युद्ध !

कृष्ण—हाँ, कर्ण घटोत्कच युद्ध।

से दीख पडती है। दूर पर धुंधले-धुंधले हाथी, घोड़े और रथ दिखायी देते है, निकट दोनो पक्षो के युद्ध के पदाति। इधर-उधर मनुष्यो, गजो और अश्वो के कटे हुए अग दृष्टिगोचर होते है। बिजली की कडक के अतिरिक्त हाथियो की चिग्घाड, घोडो की हींस और मनुष्यो के नाना प्रकार के शब्दो से वायु-मडल भरा हुआ है। सारे दृश्य और शब्दो से जान पडता है कि घोर युद्ध हो रहा है। निकट ही एक बडे अद्भुत स्वरूप का व्यक्ति युद्ध करता हुआ आता है। उसका ताम्र वर्ण है और अत्यन्त ऊँचा शरीर। सिर के लम्बे-लम्बे खडे बाल और बड़ी-बडी मूँछो, दाढ़ी के बाल पीले रंग के है। दांत भी बहुत बडे-बडे है। यही घटोत्कच है। देखते-देखते घटोत्कच इतना ऊँचा हो जाता है कि उसके बाल बादलो को छूते हुए दिख पड़ते है। कुछ ही देर में उसके टुकडे-टुकड़े हो जाते है। उन टुकडो से अगणित घटोत्कचो की उत्पत्ति होती है। शनै शनै. फिर एक होकर घटोत्कच उड जाता है। थोडी देर में वह फिर आकाश से उतरता है अब बार-बार दिखता तथा अन्तर्धान होता है। कुछ ही देर में उसके चारो ओर सिंह, रीछ एव सर्प दिख पडते है। ऊपर लोह के एक विचित्र प्रकार के मुख वाले पक्षी उडते हुए दिखायी देते है। इस महा भयानक लीला के कारण सेना में अब "त्राहि त्राहि, पाहि पाहि" नाना प्रकार के हाहाकार सुन पडते है एकाएक वृष्टि आरम्भ होती है। वृष्टि का वेग बढता ही जाता है। पानी बरसते-बरसते पत्थर बरसने लगते है। धीरे-धीरे इन पत्थरो का आकार बढता है। अब तो सेना आर्तनाद करती हुई भागने लगती है। पत्थर की वर्षा के बाद बिजलियां गिरना आरम्भ होता है। दृश्य और शब्द इतने भयानक हो जाते है कि वर्णन करना कठिन है। इतने में ही निकट से एक रथ में से निम्नलिखित शब्द सुनायी पडते है—"कर्ण वसुषेण अर्जुन भीम से भय नहीं यह घटोत्कच हाँ, प्रलय का फिर अर्जुन से कौन युद्ध ? चलाओ। हाँ हाँ अब अविलम्ब फिर सुरपति की शक्ति का क्या काम ?" पूर्ण वाक्य अन्य

की मृत्यु से क्षोभ हो रहा है। मैं कहता हूँ कि राज्य की न तुम्हारे पुत्र पौत्रादि के लिए आवश्यकता है, न तुम पाँच के लिए। प्रश्न राज्य का है ही नही, प्रश्न है सत्-सिद्धान्तो की विजय का। इसके लिए जिस-जिस की मृत्यु होनी हो, हो जाए और एक दिन मृत्यु तो प्रत्येक की होती ही है। इस मर्त्यलोक मे कोई अमर होकर आता है? महान् वही है जो किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए मरता है। घटोत्कच की मृत्यु भी एक ऐसी ही मृत्यु है। वह शोक करने की बात नही, आनन्द मनाने की घटना है।

भीम—आनन्द मनाने की घटना, वासुदेव! यह तो आपने अभिमन्यु की मृत्यु के समय भी नही कहा।

कृष्ण—हाँ, क्योकि अभिमन्यु की मृत्यु से घटोत्कच की मृत्यु महान् है। अब अर्जुन और कर्ण का युद्ध हो सकेगा।

[पाडव कुछ बोलते नहीं और उत्सुकता से कृष्ण की ओर देखते है।]

कृष्ण—उस दिन मैने कहा था न कि कई बाते ऐसी होती है जिनका कारण उन बातो के हो जाने पर समझ मे आता है।

युधिष्ठिर—हाँ, आपने कहा था।

कृष्ण—अब सुन लीजिए, कर्ण-अर्जुन युद्ध होने के पूर्व कर्ण-घटोत्कच के युद्ध का क्या कारण था? कवच, कुडल देते समय वसुषेण को सुरपति से एक शक्ति प्राप्त हुई थी, वह अमोघ थी। किन्तु उसका उपयोग कर्ण एक ही बार कर सकता था। अर्जुन पर चलाने के लिए कर्ण के पास वह शक्ति सुरक्षित थी। घटोत्कच के मायावी युद्ध के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से वह न चलवायी जा सकती थी।

अर्जुन—(दीर्घ निश्वास लेकर) तो अच्छा होता, यदुराज, यदि वह मुझ पर ही चल जाती।

कृष्ण—व्यर्थ की बाते न करो, फाल्गुन, वह यदि तुम पर चल जाती तब तो युद्ध ही समाप्त हो जाता। फिर कर्ण को कौन मारता? कर्ण के अजेय रहते युद्ध का क्या परिणाम होता? (कुछ रुककर) और एक

बात जानते हो, कवच-कुंडल तथा शक्ति के जाने पर भी। यह कह सकना कठिन है कि कर्ण और तुम मे कौन श्रेष्ठ वीर है ?

अर्जुन—(क्रोध से) वासुदेव, वासुदेव, मै फिर कहता हूँ कि मै उस सूत का क्षण भर मे वध कर सकता हूँ।

कृष्ण—(मुस्कराते और उठते हुए) अच्छा अब अब यही तो देखना है। मै तुम्हारा रथ उसके सामने ले जाने को प्रस्तुत रहूँगा।

अर्जुन—(और क्रोध से उठते हुए) तो आप देख लेगे कि उसके वध मे मुझे कितना समय लगता है।

[शेष पाडव भी खडे होते हैं]

लघु यवनिका

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—कुरुक्षेत्र मे युद्धक्षेत्र का एक भाग

समय—रात्रि

[चन्द्रमा के प्रकाश में शर-शैया पर पडे हुए भीष्म दृष्टिगोचर होते हैं। इधर-उधर दूर-दूर तक मनुष्यो, हाथी, घोडो आदि के शव, कटे हुए अग, टूटे हुए रथ तथा उनके भाग, आयुध, शिरस्त्राण आदि दृष्टिगोचर होते है। कर्ण का प्रवेश। वह धीरे-धीरे आकर भीष्म के चरणो में अपना सिर रखकर उन्हें प्रणाम करता है।]

भीष्म—कौन ?

कर्ण—वसुषेण आपको प्रणाम कर रहा है, पितामह।

भीष्म—कर्ण !

कर्ण—हाँ, पितामह, द्रोणाचार्य के निधन होने पर जो सेनापति पद मुझे दिया जा रहा है, उसे ग्रहण करने के लिए आपसे आज्ञा मागने आया हूँ।

भीष्म—(गद्गद् स्वर से) जिसने सदा तुम्हारी निन्दा की है, उस,

सदैव तुम्हें कड़े से कड़े शब्द कहे हैं, उसके पास इस प्रकार आकर यह आज्ञा माँगना तुम्हारी महानता के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?

कर्ण—पितामह, आप मुझ से सदा अप्रसन्न रहे, सदा मुझे घृणा की दृष्टि से देखते रहे, किन्तु आप कैसे है यह मै भली भाँति जानता हूँ। अत अब, जब मै इतने बड़े कार्य के लिए जा रहा हूँ, तब कुरुवंश के सर्वश्रेष्ठ पुरुष को नमन किये बिना जाना, उनकी आज्ञा बिना जाना, यह मेरे लिए कैसे सम्भव था ?

भीष्म—कर्ण, तुम्हारी निन्दा करने तथा तुम्हे झिड़कियाँ देने पर भी मैंने तुमसे घृणा कभी नही की। तुमने मुझे समझने मे भूल की है। तुम कौन्तेय हो यह मैं जानता हूँ। तुम कितने पराक्रमी हो यह भी मुझ से छिपा नही है। परन्तु पाडवो के प्रति तुम्हारी घृणा ने तुम्हारे सच्चे धर्म का लोप कर दिया, इसी से मेरे मुख से तुम्हारी निन्दा हुई है। तुम्हारे पराक्रम की प्रशंसा इसलिए नही हुई कि उनमें और अधिक उद्दडता न आ जाए।

कर्ण—परन्तु, पितामह, सुयोधन के आश्रय मे मेरा क्या दोष है ?

भीष्म—मानता हूँ, तुम्हारा दोष नही। ऐसे ही अवसरो पर तो मनुष्य को यह कहकर, या मानकर, सन्तोष करना पडता है कि जो कुछ होना है भाग्य से होना है। मनुष्य क्या है ? कर्ण तुम ऐसे पुरुष हो, जैसा इस समय कोई नही। तुम्हारे महान् पराक्रम, तुम्हारे असीम साहस, तुम्हारे अस्त्र-शस्त्र ज्ञान का मिलान यदि किसी से हो सकता है तो अर्जुन से। तुम्हारे आत्मज्ञान, तुम्हारे पारलौकिक कृत्य, तुम्हारी दान प्रवृत्ति की तुलना यदि किसी से हो सकती है तो कृष्ण से। जिस एक व्यक्ति मे अर्जुन और कृष्ण दोनो के गुण एक साथ हो, उससे महान् और कौन हो सकता है ? किन्तु ऐसा व्यक्ति किस ओर रहा व क्या कर रहा है यह भाग्यचक्र नही तो और क्या है ? (कुछ रुककर) परन्तु क्या अभी अभी भी कुछ विलम्ब हो गया ? अब तुम दुर्योधन को छोड नही सकते, परन्तु उसे समझाकर क्या अभी भी युद्ध समाप्त नही करा सकते ? मुझे असीम

सन्तोष होगा, कर्ण, यदि मरते-मरते यह सूचना मिलेगी कि मेरी मृत्यु के साथ पाडवो और कौरवो के वैर की भी मृत्यु हो गयी।

कर्ण—(गम्भीर होकर) सुयोधन का स्वभाव भली भाँति जानते हुए भी यह आप मुझे क्या कह रहे हैं, पितामह ? जो सदा से मैं उन्हे समझाता रहा हूँ, आज एकाएक उससे ठीक उल्टा समझाने का क्या परिणाम होगा ? वे यही समझेगे कि आपके धराशायी होने तथा आचार्य के निधन के कारण मैं पाडवो से डर गया हूँ और अपने को बचाने के लिए उन्हे यह सम्मति दे रहा हूँ। युद्ध भी न रुकेगा, एव मेरा भी अपयश हो जाएगा। (कुछ रुककर) आर्य, मुझे सब कुछ सुयोधन से मिला है—राज्य, सुख और कीर्ति। जो उनका है वह मैं उन्ही के अर्पण कर देना चाहता हूँ, इतना ही नही, यह शरीर भी उनके ऋण से उऋण होने के लिए। पितामह, आज्ञा दीजिए कि मैं अपनी समस्त शक्ति के सग उनका साथ दूं। अर्जुन से ऐसा युद्ध करूँ जैसा कोई भी नही कर सका। आपकी आज्ञा के बिना अब मुझ से वैसा युद्ध भी न हो सकेगा।

भीष्म—(विचारते हुए) यदि यही बात है तो मैं तुम्हे युद्ध की अनुमति देता हूँ, परन्तु युद्ध करना निरहकार तथा निष्काम होकर, कर्तव्य तथा धर्म पालन की दृष्टि से, नही तो उसमे सुख भी न मिलेगा।

कर्ण—(प्रसन्नता से) आपकी आज्ञा के अक्षरश पालन का प्रयत्न करूँगा। (कुछ रुककर) जाते-जाते एक प्रार्थना और है, पितामह।

भीष्म—क्या ?

कर्ण—(गद्गद् स्वर से) भूल से या रोष से, या किसी भी प्रकार, जो कुछ, कभी भी मैने आपसे कह दिया हो, उसे आप क्षमा कर दे, पितामह, और मुझे आश्वासन दे दे कि आपने मुझे क्षमा कर दिया।

भीष्म—(गद्गद् स्वर से) तुम मेरे पौत्र के सदृश हो, कर्ण, मैने तुम्हे क्षमा किया।

[कर्ण फिर भीष्म के चरणो में सिर रखता है।]

यवनिका

उपसंहार

स्थान—कुरुक्षेत्र मे युद्धक्षेत्र

समय—अपराह्न

[जहाँ तक दृष्टि जाती है वहाँ तक युद्ध ही युद्ध दिखायी देता है। गजारोहियो से गजारोही, अश्वारोहियो से अश्वारोही, रथियो से रथी और पदातियो से पदाति लड रहे है। अनेक गिरते हैं, कटते है, मरते है, हाथी, घोडे, मनुष्यो के शवो से भूमि पटी हुई है। अनेक पृथक्-पृथक् कटे हुए अग भी दीख पडते है। टूटे हुए रथ, उनके भाग, आयुध, शिरस्त्राण आदि भी पडे है। नाना प्रकार के युद्ध-शब्दो से वायुमडल भरा हुआ है। घोर युद्ध का दृश्य है।]

पट परिवर्तन

[अभी भी दूर पर उपर्युक्त प्रकार का युद्ध दिखायी पड़ता है, परन्तु निकट कर्ण तथा अर्जुन के रथ दिखायी दे रहे है। दोनो के रथो की पहिचान उनकी ध्वजा से होती है। कर्ण के रथ की ध्वजा पर हाथी के कन्धो पर सुनहरी शख का चित्र है और अर्जुन के रथ की ध्वजा पर वानर का। दोनो रथो में चार-चार घोडे जुते है। दूरी के कारण रथ पर बैठने वाले नही दिख पडते, पर दोनो ओर से छूटते हुए बाण तथा नाना प्रकार के आयुधो एव रथो के इधर-उधर अत्यन्त वेग से घूमने के कारण कितनी भयानकता से युद्ध हो रहा है, इसका पता लग जाता है।][1]

---

[1] नोट—इस दृश्य के यहाँ तक का अश सिनेमा मे ही दिखाया जा सकता है।

पट परिवर्तन

[कर्ण का रथ निकट ही खड़ा है। उसके रथ का चक्र धरती में गड़ गया है। कर्ण रथ से उतरकर चक्र के निकालने का प्रयत्न कर रहा है। उसका कवच टूट गया है तथा शरीर में स्थान-स्थान पर हो गये घावों में से रक्त बह रहा है। अर्जुन का रथ उसके रथ के सामने खड़ा है। उस पर अर्जुन और कृष्ण बैठे है, कृष्ण सारथी के स्थान पर। अर्जुन भी आहत है। उसके धनुष पर बाण चढा है।]

कृष्ण—हाँ, चलाओ, चलाओ बाण, धनजय।

कर्ण—(रथ के चक्र को हाथो से निकालने का प्रयत्न करते-करते अर्जुन की ओर देखते हुए) ठहरो, ठहरो, पार्थ। इतने महान् होते हुए भी तुम मेरी कठिनाई से लाभ उठाना चाहते हो? मुझे इस चक्र को तो निकाल लेने दो?

कृष्ण—(अर्जुन से) मैं कहता हूँ चलाओ बाण। क्या प्रतिमा के सदृश बैठे हो।

कर्ण—मैं फिर कहता हू, ठहरो, कौन्तेय, तुम रथ पर हो, मैं भूमि पर, ऐसी दशा मे मुझ पर प्रहार करना क्या तुम्हे शोभा देगा? मेरे हाथो म शस्त्र तक नहीं! क्या तुम नि शस्त्र पर आक्रमण करोगे? आज मैं तुम्हारे चारो भाइयो को मार सकता था, पर मैने उन्हे प्राणदान दिया है। वीर के धर्म का स्मरण करो, युद्ध के धर्म का

कृष्ण—(बीच ही में अर्जुन से) अर्जुन, अर्जुन, न जाने कब तुम मे बुद्धि आएगी। (कर्ण से) और तुम्हे आज धर्म स्मरण आ रहा है, कर्ण? पाडव तो सदा ही धर्मनिष्ठ रहे है, पर अधर्मियो को आपत्ति के समय ही धर्म याद आता है। जब युधिष्ठिर को बुलाकर तुम लोगो ने छल से जीता, तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था? जब द्रौपदी का केश खींचा गया तब तुम्हारा धर्म कहा गया था? जब तेरह वर्ष बन और

अज्ञातवास मे रहने पर भी पाडवो को तुम लोगो ने पाँच गाँव तक न दिये, तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था ? जब अकेले बालक अभिमन्यु को तुम सब ने मिलकर

[अभिमन्यु का नाम अर्जुन के कान में पडते ही उसके हाथ से बाण चल जाता है। बाण कर्ण के वक्षस्थल पर लगता है। कर्ण धराशायी होता है। कृष्ण और अर्जुन रथ से कूदकर कर्ण के शरीर के पास पहुँचते है और दोनो कुछ देर रक्त से लथपथ कर्ण के शव को देखते है।]

कृष्ण—कुरुदेश का सबसे महान् वीर, सबसे उच्च हृदय व्यक्ति, आज स्वर्ग को सिधारा। धनजय, इस लोक मे इसका पूर्णोत्कर्ष इसलिए न हो सका कि दुर्योधन के दुष्ट सग के ग्रहण से यह सदा ग्रसित रहा। तुम इसे ऐसी कठिनाई मे न मारते, तो इसे जीतना असम्भव था। पाडव आज विजयी हो गये, पर जानते हो किसके वध से तुम्हे विजय मिली ?

[अर्जुन कुछ न कह, उत्सुकता से कृष्ण की ओर देखता है।]

कृष्ण—अपने अग्रज के वध से।

अर्जुन—(अत्यन्त आश्चर्य से) अग्रज अग्रज, वासुदेव !

कृष्ण—हाँ, कौन्तेय, कर्ण सूत नहीं, वह कुन्ती-पुत्र था।

[अर्जुन स्तब्ध हो कृष्ण की ओर देखता रह जाता है।]

यवनिका

समाप्त

सेठ गोविन्ददास के प्रकाशित अन्य पूरे, एकांकी और एक पात्री नाटक

पूरे नाटक

ऐतिहासिक

हर्ष—(नागपुर विश्वविद्यालय के बी० ए० (आनर्स) कोर्स मे नियु
शशिगुप्त—(नागपुर के इटर और यू० पी० के मेट्रिक कोर्स मे निय
कुलीनता

पौराणिक

कर्त्तव्य—(कलकत्ता विश्वविद्यालय के एम० ए० कोर्स म निय

सामाजिक

प्रकाश, सेवापथ, दलितकुसुम, पतितसुमन, हिंसा या अहि
त्याग या ग्रहण, नवरस, सिद्धांत स्वातन्त्र्य, सतोष कहाँ ?, पाकिस्ता

एकांकी

ऐतिहासिक

पचभूत—(पाँच ऐतिहासिक एकाकियो का सग्रह)

सामाजिक

सप्तरश्मि—(सात एकाकियो का सग्रह)
अष्टदल—(आठ एकाकियो का सग्रह)
एकादशी—(ग्यारह एकाकियो का सग्रह)
स्पर्द्धा
विकास—(हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा मे नियत)

एक पात्री

चतुष्पथ—(चार एक पात्री नाटको का सग्रह)

नाट्य साहित्य और कला पर निबंध

नाट्य कला मीमासा

हमारे प्रकाशन

१ नवयुग के गान–सचित्र कविता-सग्रह (श्री मिलिन्द) १।
२ चिन्तनकण–निवन्ध-सग्रह (श्री मिलिन्द) १।)
३ ग्राम-चिन्तन–ग्रामसुधार पर प्रामाणिक पुस्तक १॥)
४ अश्वपरीक्षा–अपने विषय की एकमात्र पुस्तक २॥)
५ शासन-शब्द-सग्रह–राजकीय शब्दो का सग्रह ३)
६ पृथ्वीराज की आँखे–एकाकी नाटको का सग्रह १।)
७ गीता-परिचय–गीता की सरल व्याख्या ॥)
८ मधुमक्खी (श्री शान्तिचन्द्र) =)
९ जगल (श्री शान्तिचन्द्र) =)
१० विभूति–एकाकी नाटको का सचित्र सग्रह (डॉ०वर्मा) २)
११ पांच धागे–कहानी-सग्रह (श्री० चन्द्रजी) १।)
१२ शहर का अन्देशा–हास्य एव व्यग्य की सचित्र पुस्तक २)
१३ वे चेहरे–कहानी-सग्रह १
१४ नागरी का अभिशाप–(चन्द्रवली पाडे) १)
१५ कर्ण–नाटक (सेठ गोविन्ददास) २)
१६ झाँकी–कहानी-सग्रह–(दौलतराव परशराम) १)
१७ मधुमाधवी–कहानी-सग्रह (रा० मो० करकरे) २)